देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक-37, नवंबर- दिसंबर 2021

सम्पादक : **सुभाष चंद्र**

सम्पादन सहयोग : अरुण कैहरबा, जयपाल, कृष्ण कुमार, राजकुमार जांगड़ा, अविनाश सैनी

सलाहकार : प्रो. टी.आर.कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री, अशोक भाटिया, सत्यवीर नाहड़िया, जगदीश आर्य

प्रबंधन : कीर्ति सैनी, विकास साल्याण, योगेश शर्मा

प्रकाशक : सत्यशोधक फाउंडेशन,
912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र -136118

संपर्क : सुभाष चंद्र - 94164-82156,
विकास साल्याण - 90501-82156

ई-मेल : haryanades@gmail.com

वेबसाइट : www.desharyana.in

यह अंक हमारी वेबसाइट पर उपलब्ध है।

सहयोग राशि : (पंजीकृत डाक खर्च समेत)

आजीवन - पांच हजार, **वार्षिक** - पांच सौ (संस्था), तीन सौ (व्यक्तिगत)

आनलाइन भुगतान के लिए बैंक खाते का विवरण:

Bank Name - Indian Bank, Sector-13, Kurukshetra

Account Name - Satya Shodhak Foundation,

Account No. - 50490177180 , IFSC - IDIB000K849

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।
सम्पादन एवं संचालन अवैतनिक। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय।

अनुक्रम

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ु-ए-क़ातिल में है
ऐ शहीद-ए-मुल्क-ओ-मिल्लत मैं तेरे जज्बों के निसार
तेरी हिम्मत का चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है
वक़्त आने दे दिखा देंगे तुझे ऐ आसमाँ
हम अभी से क्या बताएँ, क्या हमारे दिल में है

भारत को आजाद हुए पचहतर वर्ष हो गए। भारत को आजादी तोहफे में नहीं मिली, बल्कि इसके लिए दो सौ साल का निरंतर संघर्ष है, जिसमें लाखों-करोड़ों लोगों ने साम्राज्यवादी शासन की यातनाएं सहन की और शहादतें दी। निश्चित तौर पर स्वतंत्रता-सेनानियों-शहीदों के कुछ आदर्श थे, कुछ सपने थे जिन पर दृष्टि डालने और हृदयंगम करने का अवसर है। आजादी के आंदोलन के संकल्पों-संघर्षों और उसमें विभिन्न शक्तियों की भूमिकाओं को पहचानने तथा आजादी के पचहतर सालों की उपलब्धियों और असफलताओं की ओर नजर डालने का भी है।

भारत की आजादी के अमृत-महोत्सव मनाने की पहल सरकार की ओर हुई है। वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण के दौर में शासन-सत्ताओं द्वारा भाषा का प्रयोग बेहद चालाकी पूर्ण ढंग से किया जाता है। जनता को भ्रमित करने और अपनी वास्तविक मंशाओं को भाषा के जाल से ढांपने की पूरी कोशिश की जाती है। हर मौके को उत्सव में तब्दील करने की बाजारवादी युक्ति को शासन-सत्ताओं ने भी अपनाया है। उत्सवों-महोत्सवों की चकाचौंध में चीजें सही स्वरूप में दिखाई नहीं देती।

आजादी के बाद भारत के नेताओं ने धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक व्यवस्था को अपनाया। संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता आंदोलन के मूल्यों-आदर्शों को दर्ज कर दिया गया। लेकिन सामाजिक-राजनीतिक जीवन में संवैधानिक मूल्यों को स्थापित करने में कितनी सफलता मिली यह बहस तलब विषय है। वैश्वीकरण की तीव्र होती प्रक्रियाओं के बीच देशप्रेम, देशभक्ति, राष्ट्रवाद को लेकर बहस छिड़ना दिलचस्प है। देशप्रेम और राष्ट्रवाद की कसौटी धार्मिक, भाषायी या नस्लीय है या भौगोलिक इन सब सवालों पर तीखी बहस है। राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय राष्ट्रवाद का स्वरूप किस तरह का बना। देशप्रेम और राष्ट्रवाद पर्याय हैं या इनमें कुछ अंतर है। इन सवालों पर विचार करते हुए ही सही परिप्रेक्ष्य समझा जा सकता है।

जिस जगह हम पैदा हुए, पले-बढ़े वहां की प्रकृति और संस्कृति के प्रति लगाव, प्रेम और भक्ति स्वाभाविक है। देश-प्रेम में दूसरों की सफलताओं-उपलब्धियों का स्वीकार और बराबरी का भाव होता है, सर्वोपरि व सर्वश्रेष्ठता का नहीं। राष्ट्रवाद में सर्वोपरि व सर्वश्रेष्ठता का भाव होता है और कई बार इसका फलक इतना संकीर्ण होता है कि विविधताओं और कथित दूसरों का स्वीकार नहीं होता।

देश प्रेम अपने देश के लोगों से अधिक संबंधित है। इसकी वफादारी लोगों के प्रति है, लोगों के लिए देश-प्रेमी अपनी राज-व्यवस्था की घोर आलोचना करता है, अपने समाज की कमजोरियों को चिह्नित करता है। राष्ट्रवाद का संबंध लोगों की अपेक्षा व्यवस्था से अधिक है। राज-व्यवस्था अपनी आलोचना को सहन नहीं करती तभी तो अपने ही नागरिकों पर राजद्रोह के मुकदमे इसी कारण बनाये जाते हैं।

दूसरों से घृणा करना और इतिहास के पक्षों को काले से सफेद और सफेद से काले करना सच्चे देशप्रेमी का काम नहीं, बल्कि वे अपने देश की विरासत से शक्ति अर्जित करते हुए पाखंडों और दोषों की खुल कर आलोचना करते हैं।

देश-प्रेम और राष्ट्र-उन्माद दो भिन्न चीजें हैं, जिस तरह राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रवाद दो अलग चीजें हैं। देश-प्रेम और राष्ट्रवाद यदि पर्याय नहीं हैं तो फिर इनमें कौन पहले अस्तित्व में आया। स्वाभाविक है कि देश-प्रेम। राष्ट्र-राज्य की उत्पति काफी बाद की है। यूं तो अपने देश के प्रति प्रेम व भक्ति तो हमेशा ही मौजूद रही है, लेकिन आधुनिक काल में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास भाषा, धर्म, क्षेत्र आदि की संकीर्णता के साथ नहीं बना, बल्कि विभिन्न विचारधाराओं के साथ साम्राज्यवाद के विरोध में पनपा है, जिसमें विविधता का सम्मानजनक स्थान है।

सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम मात्र सत्ता हासिल करने का नहीं, बल्कि उसकी जो प्रेरणा थी वह आधुनिक थी। साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण के खिलाफ हिंदू-मुस्लिम एकजुटता थी। बेशक 1857 के आंदोलन में अंग्रेजी शासन को हटा नहीं सके, लेकिन आगे के समाज और संघर्ष की बुनियाद है यह।

आधुनिक हिंदी साहित्य नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन के सांस्कृतिक परिवेश में विकसित हुआ। इस परिवेश की तमाम बहसें, मूल्य, आदर्श और पिछड़ापन-संकीर्णताएं आदि सब आधुनिक हिंदी साहित्य का हिस्सा हैं। आधुनिक होने का मतलब ही है स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के मूल्यों में आस्था और उनको स्थापित करने का संघर्ष। कपड़ों, खान-पान और सभ्यता की अन्य उपलब्धियां संचार के साधन आदि आधुनिक दिखने के बाहरी लक्षण प्राप्त करना आसान है, लेकिन वर्णधर्म-जातिप्रथा-पितृसत्ता की जकड़ के चलते आधुनिक मूल्यों को धारण करना और उन्हें जीवन में उतारना इतना आसान नहीं।

नवजागरण के दौरान जोतिबा फुले-सावित्रीबाई फुले, दयानंद सरस्वती, सर सैयद अहमद खान, विवेकानंद अनेक वैचारिक-बौद्धिक नेता दिखाई देंगे। उनके मुद्दों में भी व्यापक अंतर है, बल्कि कई मामलों में एक-दूसरे के विपरीत भी हैं। ये धाराएं सामाजिक स्तर पर काम कर रही थीं, समाज को आत्म मूल्यांकन के लिए प्रेरित कर रही थीं और अपने बारे में स्वयं सोचने को प्रेरित कर रही थी।

भारत में सामाजिक क्रांति के जनक जोति राव फुले राष्ट्र निर्माण में शोषित-वंचित समाज का प्रतिनिधित्व व भागीदारी के समर्थक थे। फुले ने समय में ही कांग्रेस बनी। मजदूरों, किसानों, दलितों, वंचितों की भागीदारी के संदर्भ में फुले ने आभिजात्य चरित्र और उच्च जाति वर्चस्व की आलोचना की। प्रेमचंद ने राष्ट्रवाद को आधुनिक युग का कोढ़ कहा है। भारतीय राष्ट्रीय-आंदोलन के नेतृत्व के वर्ग-चरित्र के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद जैसे लेखकों और बुद्धिजीवियों ने भी आलोचना की है। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने राष्ट्रवाद पर प्रश्नचिह्न लगाया है। कोई नहीं कह सकता कि जोती राव फुले, प्रेमचंद और रवींद्रनाथ टैगोर देश-प्रेमी और देश भक्त नहीं थे।

राष्ट्रीय आंदोलन विकसित हुआ है इसके परिप्रेक्ष्य में विस्तार होता गया है। इस विस्तार या बदलाव को राजनीतिक और साहित्यिक धाराओं में भी देख सकते हैं। राजनीतिक सत्ता में भागीदारी व मुक्ति के संघर्ष में मुख्यतः चार धाराएं रही, जो अपने विचारों और तौर-तरीकों से राष्ट्रीय अंदोलन में भाग ले रही थी। गांधी-नेहरु के नेतृत्व में कांग्रेसी धारा, आंबेडकर के नेतृत्व में दलित धारा, शहीद भगतसिंह के नेतृत्व में क्रांतिकारी धारा और सावरकर के नेतृत्व में हिंदू महासभा व जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक धारा।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में विशेषतौर दो विश्वयुद्ध और रूस की क्रांति ने न केवल यूरोप के बौद्धिक-साहित्यिक-कलात्मक जगत को प्रभावित किया बल्कि भारत को भी प्रभावित किया है। रूस की क्रांति से बनी वर्गविहीन व शोषणविहीन सामाजिक व्यवस्था का आदर्श भारत के क्रांतिकारी आंदोलन और बौद्धिक-साहित्यिक-कलात्मक जगत की ऊर्जा का स्रोत बनी।

राष्ट्र के निर्माण, राष्ट्रीय चेतना के विकास और राष्ट्रीय आंदोलन में साहित्य की और साहित्यकारों की सराहनीय भूमिका रही। अनेक साहित्यकारों ने व्यवस्था का उत्पीड़न सहन किया, जेल गए, फांसी चढ़े। सबको पता है कि माधवराव सप्रे पहले व्यक्ति थे जिन पर 1905 में राजद्रोह का मुकदमा दर्ज हुआ था। माखनलाल चतुर्वेदी के बारे में कहा जाता है कि वे बारह बार जेल गए थे और 69 बार उनके घर की तलाशी ली गई थी। राहुल सांकृत्यायन चार बार जेल गए। यशपाल, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जगदंबा प्रसाद 'हितैषी', रामबृक्ष बेनीपुरी, बनारसी प्रसाद भोजपुरी, यशपाल, फणीश्वर रेणु, अज्ञेय आदि अनेक साहित्यकार के जेल गए।

प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर लखनऊ में, सन् 1936 में प्रेमचंद ने अध्यक्षीय भाषण में साहित्य की कसौटी, सौंदर्य की परिभाषा बदलने की बात कही थी उसे जनसाधारण के संघर्षों के साथ जोड़ने पर बल दिया था। वह समस्त साहित्य जगत की भावना समोये हुए था, जो प्रेमचंद की वाणी से अभिव्यक्त हो रहा था। आजादी के आंदोलन के मुद्दे तत्कालीन साहित्य का मुख्य स्वर था। साम्राज्यवादी शोषण का विरोध, साम्प्रदायिक सद्भाव व एकता, सामाजिक समानता व समाज के समस्त वर्गों की शासन में भागीदारी के इर्द-गिर्द भारतीय राष्ट्रवाद का विकास हुआ। धार्मिक-भाषायी सांस्कृतिक बहुलता को सम्मान व स्वीकृति इसकी प्रमुख विशेषता के तौर उल्लेखित हुई। भारतीय परंपरा नहीं बल्कि परंपराओं, भारतीय संस्कृति नहीं बल्कि संस्कृतियों को चिह्नित किया गया। 'एक धर्म, एक भाषा, एक नस्ल' आधारित राष्ट्रीयता का यूरोपियन मॉडल भारत के अनुकूल नहीं था। तत्कालीन साहित्य में भारत की महिमा का गुणगान इसी रूप में किया गया।

सदियों से शोषित-वंचित वर्गों की भागीदारी इसमें बढ़ती गई तो मंजिल भी स्पष्ट तौर पर दिखाई देने लगी। बेशक राष्ट्र-विरोधी सांप्रदायिक शक्तियों की जनता में स्वीकार्यता नहीं थी, लेकिन जैसे-जैसे आजादी की मंजिल निकट दिखाई देने लगी तो साम्प्रदायिक राजनीति भी जोर पकड़ने लगी। सांप्रदायिक शक्तियों और साम्राज्यवादी गठजोड़ का कुचक्र धर्म के आधार पर भारत-विभाजन करने में सफल रहा। सांप्रदायिक उन्माद व नफरत से जो भारतीय जन को त्रासदी झेलनी पड़ी उसकी हृदय-विदारक पीड़ा को साहित्यकारों ने अभिव्यक्ति दी है।

आजादी के बाद भी साम्प्रदायिक राजनीति समाप्त नहीं हुई, बल्कि पुरातनपंथी-रुढ़िवादी सोच व व्यवस्था के साथ संबद्ध होकर न केवल अपना अस्तित्व बनाए रही और भारतीय जनता की एकता के आधार को तोड़ती रही। धर्म, राष्ट्र, संस्कृति, भाषा, इतिहास आदि का सांप्रदायिकरण करती रही। सांप्रदायिक नफरत, उन्माद और दंगे आजाद भारत के स्थायी भाव बन गए। साहित्यकारों ने अपनी विरासत को पहचानते हुए इसे विभिन्न विधाओं में संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर इस अंक में साहित्य की विरासत को याद कर रहे हैं। देश-प्रेम और राष्ट्रवाद को जिन व्यापक अर्थों में साहित्यकारों ने समझा था और शासन सत्ताओं की यातनाएं सहन की थी वह आज के साहित्य की विरासत है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान साहित्य की हर विधा में जन-भावनाओं को अभिव्यक्ति दी थी। यहां हम सिर्फ कविता पर केंद्रित करते हुए तत्कालीन कविताओं को प्रस्तुत कर रहे है जिंहोंने जनता को मुक्ति के संघर्ष के लिए प्रेरित किया था। कोशिश रही है कि स्वतंत्रता आंदोलन की प्रत्येक धारा को अभिव्यक्त करने वाली कविताएं यहां रहें।। उम्मीद है आपको ये पसंद आयेगा।

सुभाष चंद्र

1857 का राष्ट्रगीत

अजीमुल्ला खान

अजीमुल्ला खान सन् 1857 की क्रांति के शिल्पी थे। अजीमुल्ला खान का जन्म 1820 में बिठुर में हुआ। इनके पिता बहीमुल्ला खान राजमिस्त्री थे। एक अंग्रेज ने उनको छत से धक्का दे दिया था, जिससे उनकी मौत हो गई। उनकी मां अजीमुल्ला को कानपुर ले आई। अपने बेटे को अंग्रेजी व फ्रेंच भाषा भी सिखाई। यह गीत 1857 की क्रांति के दौरान जगह-जगह गाया गया। इसे क्रांतिकारियों के अख़बार 'पयामे-आज़ादी' में सबसे पहले छापा गया था।

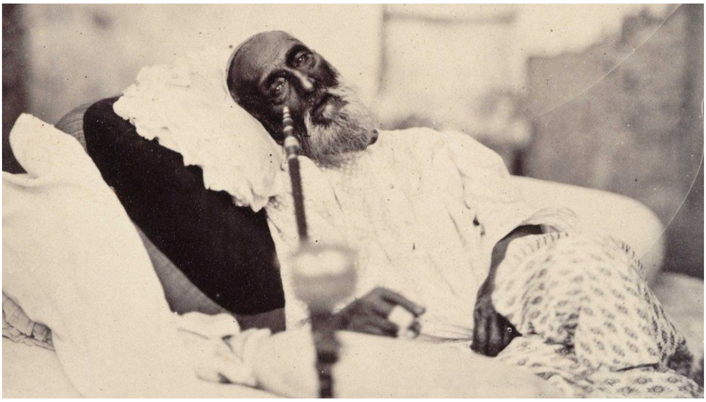
हम है इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।

ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानियत से, रौशन है जग सारा;
कितना कदीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती है जरखेज़ जिसे, गंगो-जमन की धारा।

ऊपर बर्फ़ीला पर्वत, पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा;
इसकी खानें उगल रही, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शानो शौकत का, दुनिया में जयकारा।

आया फ़िरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा;
आज शहीदों ने है तुमको, अहले वतन पुकारा,
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।

हिन्दू, मुसलमां, सिख हमारा भाई-भाई प्यारा,
ये है आजादी का झन्डा, इसे सलाम हमारा।



बहादुर शाह जफर

लगता नहीं है दिल मिरा उजड़े दयार में
किस की बनी है आलम-ए-ना-पाएदार में

इन हसरतों से कह दो कहीं और जा बसें
इतनी जगह कहाँ है दिल-ए-दाग़-दार में

काँटों को मत निकाल चमन से ओ बाग़बाँ
ये भी गुलों के साथ पले हैं बहार में

बुलबुल को बाग़बाँ से न सय्याद से गिला
क़िस्मत में क़ैद लिक्खी थी फ़स्ल-ए-बहार में

कितना है बद-नसीब 'ज़फ़र' दफ़्न के लिए
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कू-ए-यार में

बहादुरशाह जफर का घोषणा-पत्र

[25 अगस्त 1857]

हिंदुस्तान के हिन्दु और मुस्लमान भाइयो ! उठो ! खुदा ने जितनी बरकतें इंसान को अता की है, उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है। क्या वह जालिम फिरंगी जिसने धोखा देकर हमसे यह बरकत छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रख सकेगा? क्या ख़ुदा की मर्जी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं, कभी नहीं। फिरंगियों ने इतने जुल्म किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज हो चुका है। यहां तक कि अब हमारे पाक मजहब का नाश करने की नापाक ख्वाहिश भी उनमें पैदा हो गई है। क्या तुम अब भी खामोश बैठे रहोगे ? खुदा यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि खुदा ने हिंदू-मुसलमानों के दिलों में उन्हें अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश पैदा कर दी है और खुदा के फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अंग्रेजों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी से कि हमारे इस मुल्क हिंदुस्तान में उनका जरा भी निशान न रह जाएगा। हमारी फौज में छोटे और बड़े की तमीज भुला दी जाएगी और सबके साथ बराबरी का बर्ताव किया जाएगा, क्योंकि इस पाक जंग में अपने धर्म की रक्षा के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे, वे सब एक समान यश के भागी होंगे। वे सब भाई हैं, उनमें छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं फिर अपने तमाम हिंदू भाइयों से कहता हूं-उठो और ईश्वर के बताए हुए इस परम कर्तव्य को पूरा करने के लिए मैदान-ए-जंग में कूद पड़ो।

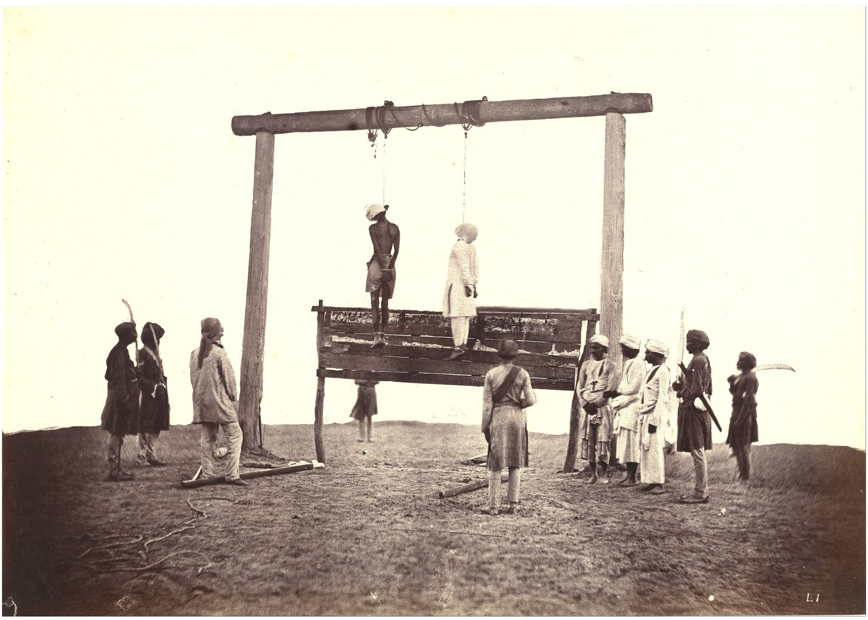
अनेक हिंदू और मुसलमान सरदार जिन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने मकानों को छोड़ दिया था और जो भारत में अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं, मेरे पास आए और धर्मयुद्ध के संचालन में हिस्सा ले रहे हैं। यह निश्चित ही है कि मुझे निकट भविष्य में ही पश्चिम से सहायता मिलेगी, अतः आप जनता के सूचनार्थ यह इश्तिहार, जिसमें अनेक धाराएं हैं, प्रकाशित किया जाता है और यह सभी का महान कर्तव्य है कि ये इस पर सावधानी के साथ विचार करें और इसका पालन करें। जो दल इस कार्य में शरीक होना चाहते हैं, लेकिन उनके पास कोई साधन नहीं है, उन्हें नित्य प्रति जीविका मुझसे

मिलेगी और सभी इस बात को जान लें कि हिंदुओं और मुसलमानों के प्राचीन ग्रंथ, दिव्य शक्ति वाले लोगों की रचनाएं और ज्योतिषियों और पंडितों का गणित सभी इस बात की पुष्टि करते हैं कि अंग्रेजों के पैर भारत अथवा अन्य कहीं नहीं जमने पाएंगे, अतः सभी को यह आशा छोड़ देनी चाहिए कि ब्रिटिश हुकूमत जारी रहेगी। मेरा साथ दीजिए तथा जनहित में निजी रूप से कार्य करके बादशाह के विश्वास का भाजन बनिए और इस प्रकार अपने हित-साधनों की प्राप्ति कीजिए।

यह जाहिर है कि ब्रिटिश सरकार ने जमींदारियां स्थापित करके बढ़े हुए 'जमा' लगाए हैं और बकाया मालगुजारी की वसूली के लिए रियासतों को सार्वजनिक नीलाम करके कई जमींदारों को अपमानित एवं बरबाद कर दिया है। यहां तक कि किसी नौकरानी अथवा गुलाम द्वारा दाखिल मुकदमे में इज्जतदार जमींदारों को अदालत में लाया जाता है और फिर गिरफ्तार कर अपमानित किया जाता है। तरह-तरह के कर लगाए जाते हैं। बादशाही हुकूमत में इस प्रकार की जबरन वसूली अथवा लूट न होगी बल्कि दूसरी ओर 'जमा' सामान्य होंगे, जमींदारों का मान और उनकी इज्जत सुरक्षित रहेगी और प्रत्येक जमींदार का अपनी-अपनी जमींदारी में स्वतंत्र शासन होगा। शरह और शास्त्रों के अनुसार बिना किसी खर्चे के जमींदारी झगड़ों का सरकारी तौर पर निर्णय किया जाएगा और जो जमींदार वर्तमान लड़ाई में जन, बल और धन से सहायता करेंगे उनकी आधी मालगुजारी हमेशा के लिए माफ़ कर दी जाएगी। ऐसे जमींदार जो केवल धन की ही सहायता देंगे, उनकी एक-चौथाई मालगुजारी हमेशा के लिए माफ कर दी जाएगी और यदि कोई जमींदार, जिसकी भूमि अंग्रेजी हुकूमत के समय अवैध रूप से छीन ली गई है, स्वयं लड़ाई में शामिल होता है, तो उसकी जमींदारी उसे वापस कर दी जाएगी और एक-चौथाई मालगुजारी भी माफ कर दी जाएगी।

स्पष्ट है कि नास्तिक और विश्वासघाती ब्रिटिश हुकूमत ने सभी अच्छी तथा बहुमूल्य वस्तुओं जैसे नील, कपड़ा तथा जहाजों द्वारा भेजी गई अन्य वस्तुओं की तिजारत पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया है और केवल मामूली वस्तुओं का व्यापार लोगों के लिए छोड़ दिया है। बादशाही हुकूमत में प्रत्येक सौदागर का कर्तव्य होगा कि वह लड़ाई में शामिल हो और बादशाही हुकूमत को अपनी हैसियत को नजर में रखते हुए गुप्त रूप से अथवा खुले तरीके से जन, बल तथा धन से सहायता पहुंचाए और ब्रिटिश हुकूमत से अपना नाता तोड़ दे। ऐसे सभी हिंदुस्तानी, चाहे वे हिंदू हो अथवा मुसलमान, जो अंग्रेजों से लड़ाई करते समय अपने प्राणों की आहुति देंगे, अवश्य स्वर्ग को जाएंगे। अतः ब्रिटिश सेना में काम करने वाले सभी भारतीयों को अपने धर्म एवं हित के प्रति पूर्ण जागरूक होना चाहिए तथा अब अंग्रेजों के प्रति अपनी वफादारी तोड़कर बादशाही हुकूमत का साथ देना चाहिए।

यह जाहिर है कि अंग्रेजों ने भारत में विदेशी चीजों का प्रचार करके यहां के बुनकरों, रुई धुनकारों, बढ़इयों, लोहारों, मोचियों आदि का काम-धंधा चौपट कर दिया है और उनकी रोजी छीन ली है, जिसके कारण ये सभी गरीब और तबाही के शिकार हो चुके हैं। लेकिन बादशाही हुकूमत में इन लोगों को बादशाही, राजाओं और रईसों के यहां काम मिलेगा और निश्चय ही फिर से सुखमय जीवन बिताएंगे, अतः इन लोगों को चाहिए कि अंग्रेजों की नौकरियां छोड़कर बलवाइयों को युद्ध में सहायता दें और इस प्रकार सुख तथा शांति का जीवन प्राप्त करें। पंडित और फकीर क्रमशः हिंदू और मुसलमान धर्म के रक्षक हैं और चूंकि यूरोप के निवासी दोनों धर्मों के शत्रु हैं तथा धर्म के कारण ही वर्तमान लड़ाई लड़ी जा रही है, इसलिए, पंडितों और फकीरों को चाहिए कि वे मेरे पास आएं और धर्म युद्ध में अपना सहयोग प्रदान करें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उन्हें शरह और शास्त्रों के अनुसार दोषी ठहराया जाएगा। लेकिन, यदि वे आते हैं तो उन्हें बादशाही हुकूमत की पूर्ण स्थापना के पश्चात लगान-मुक्त जमीन दी जाएगी। अंत में सभी यह जान लें कि इश्तिहार के जारी हो जाने के पश्चात उपर्युक्त वर्गों में से, जो कोई ब्रिटिश हुकूमत का भक्त बना रहेगा, उसकी जायदाद जब्त कर ली जाएगी, संपत्ति लूट ली जाएगी और उसे परिवार सहित जेल में बंद कर दिया जाएगा। इस प्रकार उसे अंत में अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा।



रोवहु सब मिलिं आवहु भारत भाई



भारतेंदु हरिश्चंद्र

रोवहु सब मिलिं आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।।

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनों।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

जहं भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती।
जहं राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती।।
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती।।
अब जहं देखहु तहं दु:खहिं दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।

अंगरेज राज सुख साज साजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।
ताहू पै महंगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।



माधवराव सप्रे

प्रण लो

हे भाग्य हीन हत भारतवर्ष देश ?
हे हे विनष्ट धन धान्य समृद्धि लेश।
प्राचीन वैभव विहीन मलीन वेश,
हा हा कहां तव गई गरिमा विशेष।

जो थे प्रणम्य पहले तुम कीर्तिमान।
विज्ञान और बल-विक्रम के निधान।
सम्पत्ति, शक्ति निज खोकर आज भारी
हा हा हुए तुम वही सहसा भिखारी ॥

हा सभ्य भाव तुम ने जिनको सिखाया,
विद्या कलादि गुण से जिनको जिलाया।
देखो, वही अब असभ्य तुम्हें बनाते ,
तौ भी कभी न कुछ भी तुम चित्त लाते ॥
दिव्यातिदिव्य तव रत्न, अहो, कहाँ है ?
शोभा-समूह पट-पुंज, कहो कहाँ है?
खोया सभी कुछ, न, हाय, तुम्हें हया है।
हे देश शेष तुम में रह क्या गया है।

सूई, छड़ी तक, निकृष्ट दियासलाई,
लेता सदैव सुख से फिरता पराई।
निर्लज्ज सोच मन में कर क्या रहा है ?
क्यों व्यर्थ ही धन अपार लुटा रहा है ?

छाई जहाँ अति अपार दरिद्रता है,
प्राचीन-धान्य-धन का न कहीं पता है
सुप्राप्य पेट भर नित्य जहाँ न दाना,
क्या चाहिये धन वहां पर यों लुटाना ?

हे देश सप्रण विदेशज वस्तु छोड़ो,
सम्बन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरन्त उनसे मुंह आज से ही,
कल्याण जान अपना इस बात में ही ॥

राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण-व्यवस्था, ऊंच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है - प्रेमचंद



श्रीधर पाठक

जय जय प्यारा, जग से न्यारा

जय जय प्यारा, जग से न्यारा,
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत-मुकुट, जगदीश दुलारा
जग-सौभाग्य सुदेश!
जय जय प्यारा भारत देश।

प्यारा देश, जय देशेश,
जय अशेष, सदस्य विशेष,
जहाँ न संभव अध का लेश,
केवल पुण्य प्रवेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

स्वर्गिक शीश-फूल पृथ्वी का,
प्रेम मूल, प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति नटी का टीका
ज्यों निशि का राकेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

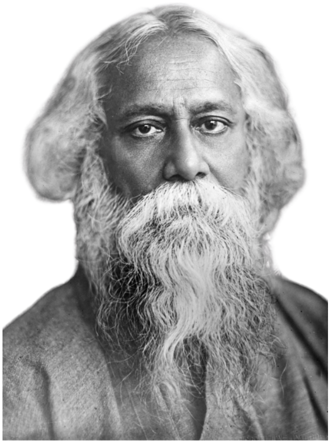
जय जय शुभ्र हिमाचल शृंगा
कलरव-निरत कलोलिनी गंगा
भानु प्रताप-चमत्कृत अंगा,
तेज पुंज तपवेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

जग में कोटि-कोटि जुग जीवें,
जीवन-सुलभ अमी-रस पीवे,
सुखद वितान सुकृत का सीवे,
रहे स्वतंत्र हमेश
जय जय प्यारा भारत देश

मेरठ में थर्ड नेटिव लाइट कैवेलरी रेजीमेंट के उन सैनिकों के नाम जिन्होंने 24 अप्रैल 1857 की सुबह चर्बी लगे कारतूस चलाने से मना कर दिया था।

हवलदार मातादीन,
शेखपीर अली नायक,
अमीर कुदरत अली नायक,
शेख हुसैनद्दीन,
शेख नूर मोहम्मद नायक,
शीतल सिंह,
जहांगीर खान,
मीर मौसिन अली,
अली नूर खां,
मीर हुसैन बक्स,
मथुरा सिंह,
नारायण सिंह,
लाल सिंह,
शोदान सिंह,
शेख हुसैना बक्स,
साहिब दाद खान,
बिशन सिंह,
बलदेव सिंह,
शेख नुन्दू,
नवाब खां,
शेख रमजान अली,
मोहम्मद खान,
मक्खन सिंह,
दुर्गा सिंह प्रथम,
नसर उल्लाह बेग,
मेहराब खान,
दुर्गा सिंह द्वितीय,
नवी बक्ष खान,
जुर खान सिंह प्रथम,
नुदजू खान,
जुर खान सिंह द्वितीय,
अब्दुल्ला खान,
इसेन खान प्रथम,
जबरदस्त खान,
मुर्तजा खान,
मरजूर सिंह,
अजीमुल्ला खान प्रथम,
अजीमुल्ला खान द्वितीय,
काला खान,
शेख सादुल्ला,
सालार बख्श खान,
शेख रुत अली,
द्वारका सिंह,
कालका सिंह,
रघुवीर सिंह,
बलदेव सिंह,
दर्शन सिंह,
इंदाद हुसैन,
पीर खान प्रथम,
मोती सिंह,
शेख फजल इमाम,
हीरा सिंह,
सेवा सिंह,
मुराद शेर खान,
शेख आराम अली,
काशी सिंह,
अशारफ अली खान,
कादर दाद खान,
शेख रुस्तम,
भगवान सिंह,
मीर इमदाद अली,
शिव वक्ष सिंह,
लक्ष्मण सिंह,
शेख इमाम बक्ष,
उस्मान खान,
दरियाव सिंह,
मसूद अली खान,
शेख गयास बख्स,
शेख उनमेद अली,
अब्दुल वहाब खान,
राम सहाय सिंह,
पनहा अली खान,
लक्ष्मण दुबे,
राम सरन सिंह,
शेख ख्वाजा अली,
शिवसिंह,
शीतल सिंह,
मोहन सिंह,
विलीयात अली खान,
शेख मोहम्मद ख्वाज,
इंद्र सिंह,
फतह खान,
मेकू सिंह,
शेख कासम अली,
रामचरण सिंह

भारत का राष्ट्रगान



जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
पंजाब-सिंधु-गुजरात-मराठा
द्राविड़-उत्कल-बंग
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा
उच्छल जलधि तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मांगे
गाहे तव जय-गाथा
जन-गण-मंगलदायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'जन-गण-मन' लिखा। इसे 27 दिसंबर 1911 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में सार्वजनिक रूप से गाया गया। 1917 में टैगोर ने इसे धुन में बांधा। इसके शब्दों की ताकत, जिस समावेशिता की यह बात करता है वह और समृद्ध सांगितिकता के कारण स्वतंत्रता आंदोलन में गाया जाने लगा। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज में 'जय हे' नाम से इसे अपनाया था। अद्‌भुत लोकप्रियता के कारण संविधान सभा ने 24 जनवरी 1950 को इसे भारत के राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार किया। गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखे गए राष्ट्रगान में पांच पद हैं। राष्ट्रगान के रूप में इसके पहले पद को ही अपनाया गया।

राष्ट्रगान के सम्मान को बरकरार रखने के लिए भी कानून बनाया गया है। राष्ट्रगान को गाए जाने की कुल अवधि 52 सेकेंड है। कुछ अवसरों पर राष्ट्रगान संक्षिप्त रूप में भी गाया जाता है। इसमें प्रथम और अंतिम पंक्तियां ही बोलते हैं। इसमें लगभग 20 सेकेंड का समय लगता है।

राष्ट्रगान का अपमान करने या इसे गाने से रोकने या परेशान करने पर संबंधित व्यक्ति अथवा समूह के खिलाफ प्रिवेंशन ऑफ इंसल्ट टु नेशनल ऑनर एक्ट-1971 की धारा-3 के तहत कानूनी कार्रवाई की जा सकती है। इसके अपमान का दोषी पाए जाने पर तीन वर्ष कारावास और जुर्माने का प्रावधान है। देशवासियों से अपेक्षा की जाती है कि जिस वक्त राष्ट्रगान बज रहा हो या गाया जा रहा हो वह अपनी जगह पर सावधान की मुद्रा में खड़े हो जाएं।

सन् 1911 में जॉर्ज पंचम का भारत में आए थे। बंगाल के विभाजन को वापस लेने के कारण रामभुज चौधरी द्वारा रचित एक हिंदी गीत जॉर्ज पंचम की स्तुति में भी गाया गया था। समाचार पत्रों में छपा कि जन-गण-मन गीत जॉर्ज पंचम के लिए गाया गया। सन 1912 में टैगोर ने इस बारे में स्पष्ट किया कि गीत में भारत की जनता ही भाग्य विधाता है। लेकिन टैगोर के विरोधी इसे हमेशा विवाद में रखते रहे। सन् 1939 में टैगोर ने इस संबंध में एक पत्र में लिखा, "मैं उन लोगों को जवाब देना अपनी बेइज़्ज़ती समझूँगा जो मुझे इस मूर्खता के लायक समझते हैं।"

भारत का राष्ट्रगीत



बंकिमचंद्र चटर्जी

वंदे मातरम

वंदे मातरम्,
वंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज-शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्
वंदे मातरम्

शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित यामिनी
फुल्लकुसुमित-द्रुमदल शोभिनी
सुहासिनीं सुमधुरभाषिनीं
सुखदां वरदां मातरम्
वंदे मातरम्

बंकिमचंद्र ने 1876 में 'वंदे मातरम्' लिखा। बाद में यह उनके उपन्यास 'आनंदमठ' में प्रकाशित हुआ। पहली बार इसे राजनीतिक संदर्भ में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1896 के सत्र में गाया था। सन 1905 में बनारस अधिवेशन में सरला देवी चौधरानी ने भी इसको गाया था। लाला लाजपत राय ने लाहौर से निकाले जा रहे अपने जर्नल का नाम भी 'वंदेमातरम' रखा था। काकोरी काण्ड के शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी पुस्तक 'क्रांति गीतांजलि' में पहला गीत 'मातृवन्दना' में वंदेमातरम के भाव वाला गीत लिखने के बाद अपनी स्वरचित उर्दू रचनाएं लिखी हैं। स्वतंत्रता आंदोलन का इतना लोकप्रिय गीत बन गया कि अंग्रेजों ने इस पर पाबंदी लगा दी, जिससे यह और भी लोकप्रिय हो गया।

वंदेमातरम के सम्बंध में राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व के सामने कुछ दुविधाएं भी आ खड़ी हुई जब ये सवाल आए कि मातृभूमि की एक धार्मिक देवी के रूप में वंदना, आनंदमठ उपन्यास का सुर मुस्लिम विरोधी होना और किसी व्यक्ति या वस्तु की पूजा समावेशी प्रभाव नहीं छोड़ती।

स्वतंत्रता के दस साल पहले कांग्रेस कार्यसमिति ने गीत के पहले दो पद्यांशों को अक्टूबर 1937 में राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार किया। 14 जनवरी सन 1950 में प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा रखे गए प्रस्ताव के अनुसार वन्देमातरम को राष्ट्रगीत को संवैधानिक दर्जा दिया गया।

भारत का राष्ट्रीय ध्वज

प्रस्तुति - अविनाश सैनी



किसी भी देश का राष्ट्रीय ध्वज उसकी अस्मिता एवं संप्रभुता का प्रतीक होता है। यह उस राष्ट्र की विचारधारा और उसके जीवन मूल्यों का आईना ही नहीं, दुनिया में उस देश की प्रमुख पहचान भी होता है। लोग अपने देश से जितना प्यार करते हैं, उतना ही प्यार अपने राष्ट्रीय ध्वज से करते हैं। यानी, झंडा देश के नागरिकों को वैचारिक एवं भावनात्मक रूप से एकजुट रखता है और राष्ट्र हित को सर्वोपरि रखने की प्रेरणा देता है। यही कारण है कि राष्ट्रीय ध्वज की आन, बान और शान की रक्षा के लिए देश के नागरिक हमेशा तत्पर रहते हैं।

भारत गणराज्य का राष्ट्रीय ध्वज केसरिया, सफेद और हरे रंग का है। इसलिए हम प्यार और सम्मान से इसे तिरंगा झंडा भी कहते हैं। इसमें इन तीनों रंगों की समान चौड़ाई की तीन क्षैतिज पट्टियां हैं। ध्वज में केसरिया रंग सबसे ऊपर, सफेद बीच में और हरा रंग सबसे नीचे है। सफेद पट्टी के बीच में नीले रंग का चक्र है, जिसमें 24 तीलियां हैं। इसका व्यास सफेद पट्टी की चौड़ाई के लगभग बराबर है। चक्र का प्रारूप सारनाथ में स्थित सम्राट अशोक के "सिंह स्तंभ" पर बने "धम्मचक्र" से लिया गया है।

ध्वज का केसरिया रंग शक्ति एवं साहस का और धम्म चक्र के साथ बीच में स्थित सफेद पट्टी शांति एवं सत्य का प्रतीक है। हरा रंग देश के शुभ, विकास और उर्वरता को दर्शाता है। ध्वज की लंबाई-चौड़ाई का अनुपात 3:2 है। राष्ट्रीय ध्वज के इस प्रारूप को भारत की संविधान सभा ने स्वतंत्रता से कुछ दिन पूर्व 22 जुलाई 1947 को अपनाया था।

वर्तमान राष्ट्रीय ध्वज की परिकल्पना पिंगली वैंकैया ने की थी। उनके द्वारा तैयार प्रारूप में कुछ फेरबदल करके इसे राष्ट्रीय ध्वज के रूप में अपनाया गया था। राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान को बरकरार रखने के लिए एक 'ध्वज संहिता' तैयार की गई है। इसमें राष्ट्रीय झंडे के निर्माण से लेकर उसे फहराने, उतारने, रखने अथवा लाने-ले जाने आदि के बारे में विस्तार से नियम दिए गए हैं।

सरकारी झंडा निर्दिष्टीकरण के अनुसार, राष्ट्रीय झंडा खादी के कपड़े से ही बनना चाहिए। यह एक विशेष प्रकार से हाथ से काते गए कपड़े से बनता है, जिसे महात्मा गांधी द्वारा लोकप्रिय बनाया था। भारतीय ध्वज देश में केवल एक ही स्थान पर, कर्नाटक के हुबली शहर में स्थित कर्नाटक खादी ग्रामोद्योग संयुक्त संघ द्वारा ही बनाया जाता है। ध्वज के लिए हाथ से बुनी खादी उत्तरी कर्नाटक के धारवाड़ और बगालकोट जिलों में स्थित दो हथकरघा यूनिटों से मंगाई जाती है। इस कपड़े की बुनाई तीन धागों से होती है, जो बेहद दुर्लभ है। कपड़ा बुनने से लेकर झंडा बनने तक की प्रक्रिया में कई बार इसकी टेस्टिंग की जाती है। मेज़, दीवार, गाड़ी व हवाई जहाज सहित अलग-अलग स्थानों/भवनों पर फहराने के झंडे के अलग-अलग आकार निर्धारित किए गए हैं। राष्ट्र विभूतियों तथा शहीद सैनिकों के पार्थिव शरीर के लिए झंडे का अलग माप (6'×4') है।

राष्ट्रीय भारतीय ध्वज संहिता के द्वारा इसके प्रदर्शन और प्रयोग पर विशेष नियंत्रण है। इसके नियमों में कुछ ढील देते हुए पहली बार 2002 में आम नागरिकों को भी अपने घरों व दफ्तरों पर झंडा फहराने की अनुमति दी गई। इसके बाद 2009 में रात में भी झंडा फहराने की छूट दे दी गई। भारत का सबसे बड़ा राष्ट्रीय ध्वज (225 फीट ×150 फीट) 2 अक्टूबर 2021 को लद्दाख में फहराया गया। यह खादी से बना दुनिया का सबसे बड़ा ध्वज है।



जयशंकर प्रसाद

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ हैं - बढ़े चलो बढ़े चलो।

असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिंधु में - सुबाड़वाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो - बढ़े चलो बढ़े चलो।

अरुण यह मधुमय देश हमारा

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।

सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा।।

लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए, समझ नीड़ निज प्यारा।।

बरसाती आँखों के बादल, बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा।।

हेम कुम्भ ले उषा सवेरे, भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊँघते रहते जब, जगकर रजनी भर तारा।।



अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

घर देखो भालो

आँखें खोलो भारत के रहने वालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।

यह फूट डालती फूट रहेगी कब तक।
यह छेड़ छाड़ औ छूट रहेगी कब तक।
यह धन की जन की लूट रहेगी कब तक।
यह सूट बूट की टूट रहेगी कब तक।
बल करो बली बन बुरी बला को टालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।।

क्यों छूत छात की छूत न अब तक छूटी।
क्यों टूट गयी कड़ियाँ हैं अब तक टूटी।
फूटे न आँख वह जो न आज तक फूटी।
छन छन छनती ही रहे प्रेम की बूटी।
तज ढील, रंग में ढलो, ढंग में ढालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।

हैं बौध्द जैन औ सिक्ख हमारे प्यारे।
चित के बल कितने सुख के उचित सहारे।
हिन्दुओं से न हैं आर्यसमाजी न्यारे।
हैं एक गगन के सभी चमकते तारे।
उठ पड़ो अंक भर सब कलंक धो डालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।।

नाना मत हैं तो बनें हम न मतवाले।
ये एक दूध के हैं कितने ही प्याले।
तब मेल-जोल के पड़ें हमें क्यों लाले।
जब सब दीये हैं एक जोत ही वाले।

कर उजग दूर जन जन को जाग जगा लो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।।

क्यों बात बात में बहक बिगाड़ें बातें।
क्यों हमें घेर लें किसी नीच की घातें।
हों भले हमारे दिवस भली हों रातें।
लानत है सह लें अगर समय की लातें।
धुन बाँधा धूम से अपनी धाक बँधा लो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।।

क्या लहू रगों में रंग नहीं है लाता।
क्या है न कपिल गौतम कणाद से नाता।
क्या नहीं गीत गीता का जी उमगाता।
क्या है न मदन-मोहन का वचन रिझाता।
मुख लाली रख लो ऐ माई के लालो।
घर देखो भालो सँभलो और सँभालो।।



रामचंद्र शुक्ल

यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्तो, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सबको वह चाहभरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुधा करके वह विदेश में ऑसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं सुनते कि चातक कहाँ चिल्लाता है, जो ऑख भर यह भी नहीं देखते कि आम प्रणय सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं, जो यह भी नहीं झाँकते कि किसानों के झोंपडों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देशप्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि, 'भाइयो! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा? जिनके सुख दु:ख के तुम कभी साथी न हुए उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह समझते नहीं बनता। उनसे कोसों दूर बैठे बैठे, पड़े पड़े या खड़े खड़े, तुम विलायती बोली में अर्थशास्त्र की दुहाई दिया करो, पर प्रेम का नाम उसके साथ न घसीटो। प्रेम हिसाब किताब की बात नहीं है। हिसाब किताब करनेवाले भाड़े पर भी मिल सकते हैं पर प्रेम करनेवाले नहीं। (लोभ और प्रीति से)



मैथिलीशरण गुप्त

स्वराज्य की अभिलाषा

शत शत सम्राटों के स्वामी!
हे अनंत! हे अंतर्यामी!
सुख का स्वप्न है कि आशा है यह स्वराज्य की अभिलाषा
किसने इसको उदित किया है?
मुरझे मन को मुदित किया है;
तुमने केवल तुमने प्रभुवर! कहती है अंतर्भाषा॥
बैठ तुम्हारे साहस-रथ में
हम न रुकेंगे अपने पथ में;
नाथ! तुम्हारी इच्छाओं को बाधाएँ ही बल देंगी।
सत्य और विश्वास मिलेंगे;
काँटों मे ही फूल खिलेंगे;
उद्योगों की कल्पलताएँ मनमाने शुभ फल देंगी॥
काला रंग बाधक होगा,
गोरों का गुण साधक होगा;
एक हृदय का मिलन हमारा तीर्थराज संगम होगा।
उन्नति में न रुकावट होगी,
होंगे योग्य उच्चपद-भोगी;
आत्मा की सच्ची समता से मनुज मनुज के सम होगा॥
कभी न नैतिक घातें होंगी,
मुक्त मानसिक बातें होंगी;
विधि-विधान मे फिर निजत्व का हमको अटल गर्व होगा।
पक्षपात, मतभेद न होगा
ग्लानि न होगी, खेद न होगा;
न्याय-सभाओं में विचार का प्रकटित पुण्य पर्व होगा॥
सुलभ सभी को होगी शिक्षा,
नहीं माँगनी होगी भिक्षा;
फिर सारे व्यापार हमारे अपने ही करगत होंगे।
उपनिवेश यमपुर न रहेंगे,
वहाँ न हम अपमान सहेंगे।

उनके वे उद्धत अधिवासी अपने आप प्रणत होंगे।।
निम्न श्रेणी के अधिकारी
रह न सकेंगे स्वेच्छाचारी;
जान-माल की रक्षा के मिस प्रजा न पिसने पावेगी।
शासक और शासितों में फिर—
चिर विश्वास रहेगा, सुस्थिर;
समस्नेह से नियम-चक्र की धुरी न घिसने पावेगी।।
हिंस्र जंतु कुछ कर न सकेंगे,
हम उनसे यों डर न सकेंगे;
हरी-भरी खेती को सूकर फिर यों नहीं उजाड़ेंगे।
होंगे स्वयं शस्त्रधारी हम,
वीर भाव के अधिकारी हम;
निज साम्राज्य-सत्व-रक्षा का झंडा हम सब गाड़ेंगे।।
परमात्मन् ऐसा कब होगा?
जब होगा बस तब सब होगा;
ब्रिटिश जाति का गौरव होगा, उच्च हमारा सिर होगा।
वह इंग्लैंड और यह भारत,
होंगे एक भाव में परिणत;
दोनों के यश का दिगंत में पुण्य पाठ फिर फिर होगा।।

सन् 1857 ई. में स्वतन्त्रता आन्दोलन के सम्बन्ध में डॉ. राम विलास मत है - "देश को आजाद कराना, राष्ट्रीय एकता स्थापित करना - इन दो उद्देश्यों अलावा सिपाहियों का एक तीसरा उद्देश्य भी था, सामन्तों की निरंकुशता खत्म कर लोकतांत्रिक आधार पर शासन का पुनर्गठन करना।

अछूत की शिकायत

हीरा डोम

यह कविता महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' (सितंबर 1914, भाग 15, खंड 2, पृष्ठ संख्या 512-513) में प्रकाशित हुई थी। दलित आबादी की आकांक्षाएं इस कविता में हैं।

हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबि।
हमनी के दुख भगवनओ ना देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।
पदरी सहेब के कचहरी में जाइबिजां,
बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबि,
हाय राम! धरम न छोड़त, बनत बाजे,
बे-धरम होके कइसे मुंहवा देखाइबि॥1॥

खंभवा के फारी पहलाद के बचवले जा,
ग्राह के मुँहे से गजराज के बचवले
धोती जुरजोधन के भइया छोरत रहे,
परगट होके तहंवा कपड़ा बढ़वले।
मरले रवनवां के पलले भभिखना के,
कानी अंगुरी पै धैके पथरा उठवले।
कहंवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब।
डोम जानि हमनी क छुए से डेराइले॥2॥

हमनी के रात दिन मेहनत करीलेजा,
दुइगो रूपयवा दरमहा में पाइबि।
ठकुरे के सुखसेत घर में सुलत बानी,
हमनी के जोति-जोति खेतिया कमाइबि।
हकिमे के लसकरि उतरल, बानी।
जेत उहओं बेगारीया में पकरल जाइबि।
मुँह बान्हि ऐसन नौकरिया करत बानी,
ई कुल खबर सरकार के सुनाइबि॥3॥

बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,
ठकुर के लेखे नहिं लउरि चलाइबि।
सहुआ के लेखे हम डंड़ी न मारबजा,
अहिरा के लेखे नहिं गइया चराइबि
भटवा के लेखे न कवित्त हम जोरबजां,
पगड़ी न बान्हि के कचहरी में जाइबि
अपने पसीनवा के पइसा कमाइबिजा
घर भर मिलि-जुलि बाटि-चोटि खाइबि ॥4॥

हड़वा मसुदया कै देहियां हे हमनी के,
ओकरे के देहियां बभनवौ के बानी,
ओकरा के घर-घर पुजवा होखत बाजे,
सगरे इलकवा भइले जजमानी।
हमनी के इनरा के निगिचे न जाइलेजा,
पांके में से भरि-भरि पिअतानी पानी
पनही से पिटि-पिटि हाथ गोड़ तुरि दैलैं,
हमने के एतनी काही के हलकानी॥5॥

गदर लहर की कविता के सरोकार



बूटा सिंह सिरसा

अठारह सौ सत्तावन के गदर की असफलता के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीतियों के कारण मंदी आई। ब्रिटिश सरकार ने किसानों पर टैक्स का बोझ लाद दिया। नौजवानों को फौज में भर्ती की ओर आकर्षित किया गया और फिर उन्हें साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए युद्धों में धकेला कितने ही नौजवान मारे गए तथा अपाहिज हुए। इसी दौर में मंदी के चलते पंजाब से बहुत सारे नौजवान अमेरिका तथा कनाडा में गये। इन प्रवासियों ने अपने अधिकारों के लिए हिंदी एसोसिएशन आफ पेसिफिक कोस्ट के नाम से एक संगठन सन् 1913 में अमेरिका में बनाया। एसोसिएशन की तरफ से अपना एक अखबार निकाला गया। इस अख़बार का नाम भी 1857 के गदर की याद में गदर रखा गया। यह अखबार इतना प्रसिद्ध हुआ कि एसोसिएशन का नाम ही गदर पार्टी पड़ गया। इस अखबार में छपने वाले लेखों में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों पर किये जा रहे ज़ुल्मों का कच्चा चिट्ठा छापा जाता था। लेखों के साथ बहुत सारी कविताएं छापी जाती थीं। यह कविताएँ रूप, कला तथा विषय के पक्ष से काव्य कला का उत्तम नमूना हैं। छंद व विषय अति उत्तम होते थे। इन कविताओं के असली रचयिता का नाम नहीं मिलता। इन कविताओं को बाद में पुस्तकों के रूप में भी 'गदर की गूंज' के नाम से छापा गया।

गदर पार्टी की कविता से प्रभावित होकर कितने ही प्रवासी विदेशों से आए व भारत के कितने ही लोग आजादी की जंग के मैदान में आए। इन कविताओं के माध्यम से जहां प्रवासी भारतीयों की मनोस्थिति का वर्णन है इसके साथ-साथ देश की राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा की जा रही लूट का जिक्र कविता में होता था ;

हिन्द लुट फिरंगियां चौड़ कीता
पैसा सूत सारा हिन्द देश वाला
इंग्लैंड दे विच लई जान लोको।
मामला वधाया बेईमान उठ के
लुट लई जांदे दिन रात डाकू
भूखे मरण गरीब किरसान लोको।

गदर लहर की कविता 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के योद्धाओं को नायक के रूप में पेश करती है। 1857 में के गदर की सबसे बड़ी विशेषता थी कि भारतीय धर्म, क्षेत्र व जाति के



भेदभाव को किनारे रखकर एकजुट होकर लड़े थे। यह गदर हमारी सांझी विरासत है। अंग्रेजों को यही बात ही सबसे बुरी लगी तथा इसके बाद उन्होंने साम्प्रदायिक व धार्मिक जहर घोलने के प्रयास पूरी योजना के साथ किये। इसी के चलते भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, धार्मिक झगड़े हुए अंग्रेजों द्वारा फैलाई की नफरत का भी जिक्र भी इन कविताओं में होता था :

हीरा हिन्द उहनां खाक कीता
रौले घत्त के वेद कुरान वाले।
एक और नमूना देखो ;
लोक हिन्द दे बड़े शुदाई फस गये मज़हबी झेड़ियां में
राजनीति दा तां ना कोई झगड़न पए बखेड़ियां में।

गदर लहर की कविता रचने वाले अधिकतर सिक्ख थे लेकिन इसके बावजूद भी इसे सिक्ख धार्मिकता की कविता नहीं कह सकते। गदर लहर के शहीदों को याद करते हुए भगत सिंह अपने लेख 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' में लिखते हैं कि 1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है , इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए ,क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसलिए गदर पार्टी जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिक्ख बढ़ चढ़ कर फांसियों पर चढ़े और हिन्दू मुसलमान भी

पीछे नहीं रहे।' कविता में धार्मिक आडम्बरों व पूजा स्थान बनाने की बजाय देश की आजादी की लड़ाई लड़ने पर जोर दिया। जैसे;

सानूं लोड़ ना पंडितां काज़ियाँ दी
नहीं शौक है बेड़ा डूबावणे दा।
मन्दिर मस्जिदां किसे ना कम्म साडे
छड्डो ख्याल गुरुद्वारे बनावणे दा।
जप जाप दा वक्त बतीत होइया
वेला आ गया तेग उठावणे दा।

अधिकतर प्रवासी पंजाबी थे लेकिन वे भी अमेरिका कनाडा के निवासियों की राष्ट्रीय भावना से प्रभावित हुए। इसी प्रभाव के कारण प्रवासियों में राष्ट्रवाद की भावना विकसित हुई। गदर लहर की कविता से यह भी पता चलता है कि वे धर्म जाति आदि के झगड़ों को छोडकर एक होकर लड़ने का महत्व समझते थे ;

जेकर बचे तां बचांगे इक्क हो के
कल्ले कल्ले दा नहीं जे तान रहना।
रही कौम तां रहेगी हिंदीआं दी
वतन रहा तां हिन्दुस्तान रहना।

गदर की कविता के कवि हिन्दुस्तान की पीड़ित कौम थे न कि किसी विशेष धर्म या क्षेत्र के लोग जैसे कि ;

बेला आन पुजा क्यों ना जागदे ओए
सुत्ते घूक हिंदू मुसलमान वीरो।
ज़ालिम कौम दी बड़ी भैड़ी
इहनां लुट खादा हिन्दुस्तान वीरो।

गदर लहर की कविता का राष्ट्रवाद सभी धर्मों के लोगों अपने औपनिवेशक गुलामी, गरीबी और उनके शोषण को आधार बनाता है। यही इस राष्ट्रवाद की सांझी विरासत है। गदर लहर की कविता में जिस राष्ट्रवाद का वर्णन किया गया है उसका अपने लोगों से जीवंत संपर्क है। गदर की कविता में पेश किया गया राष्ट्रवाद सिर्फ कविता तक सीमित नहीं था बल्कि इन कविताओं के कवि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध जंग के असली सिपाही थे। वे अपना सब कुछ देश के लिए न्योछावर करने को तैयार होकर ही विदेशों से आए थे। एक कविता है ;

गदर पार्टी बीड़ा चुकिया
हिन्द आजाद करावण दा।

आओ शेरो गदर मचाईए
मौका नहीं खुंझावण दा।

गदर की कविता का राष्ट्रवाद संकीर्ण राष्ट्रवाद नहीं बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के 'फूट डालो और राज करो' के विपरीत भारत की विविध संस्कृति को राष्ट्रीयता का अंग स्वीकार करता है। आज के समय में जिस प्रकार से धार्मिक राष्ट्रवाद को स्थापित करने के यत्न किए जा रहे हैं जो कि बहुत खतरनाक हैं। गदर लहर की कविता हमें इतिहास के उन स्वर्णिम दौर का स्मरण करवाती है जब गदरी योद्धे जाति,धर्म व क्षेत्र के भेद को भूलकर देश की जनता के लिए एक होकर लड़े । यही हमारी सांझी विरासत है तथा इसको और ज्यादा मजबूत करने की जरूरत है। गदर लहर के प्रभाव को बयाँ करती भगवान सिंह 'प्रीतम' की एक कविता



ऐ गदर ! तूने हमको अपना बना के छोड़ा,
विछड़े थे भाई-भाई सब को मिला के छोड़ा।
सोए को है जगाया मुर्दों को है उठाया,
हर दिल पे सिक्का तूने जमा के छोड़ा।
शाहों के ताज छीने प्रजा का बल दिखलाया,
आलम पे इन्कलाब-ए-आज़म है ला के छोड़ा।
बेबसों का तूने पकड़ा है हाथ आख़िर,
ताज़े शाही उन के सिर पर टिका के छोड़ा।
'जीते हैं वो हमेशा मरते जो कौम ख़ातिर',
हर दिल में डंका तूने अपना बजा के छोड़ा।
ऐ याद-ए-वतन तूने 'प्रीतम' से प्यार पा कर,
दोस्तों –अदू से बागी कहा के छोड़ा।



करतार सिंह सराभा

जबाँ मेरी, बयाँ मेरा

यही पाओगे महशर में जबाँ मेरी, बयाँ मेरा,
मैं बंदा हिंदवालों का हूँ, है हिंदोस्ताँ मेरा

मैं हिंदी, ठेठ हिंदी, खून हिंदी, जात हिंदी हूँ,
यही मजहब, यही फिरका, यही है खानदाँ मेरा
इस उजड़े हुए भारत के खंडहर का इक ज़र्रा हूँ,
यही बस एक पता मेरा, यही नामोनिशाँ मेरा।

कदम लूँ मादरे- तेरे, मैं उठते और बैठते,
कहाँ किस्मत मेरी ऐसी? नसीब यहाँ कहाँ मेरा
तेरी खिदमत में ऐ भारत यह सिर जाए, यह जाँ जाए,
तो समझँगा, यह मरना है हयाते-जादवाँ मेरा।

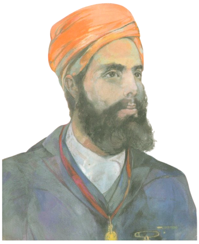
बागी ये नाम अपना

जो कोई पूछे कौन हो तुम?
तो कह दो बागी ये नाम अपना।

जुल्म मिटाना हमारा पेशा,
गदर का करना ये काम अपना
नमाज-संध्या यही हमारी,
श्रीपाठ-पूजा भी सब यही है।

धरम-करम सब यही है प्यारो,
यही खुदा और राम अपना
तेरी सेवा में ऐ भारत! अगर तन जाए, सिर जाए,
तो मैं समझु कि है मरना यहाँ पर भक्ति-पथ मेरा

पगड़ी सम्भाल जट्टा



हर आंदोलन की भावना को अपने में समेटे कुछ नारे व गीत होते हैं, जो सबको जोड़ते हैं व उत्साह भरते हैं। 1907 में अंग्रेज़ों ने पंजाब लैंड कॉलोनाइज़ेशन एक्ट और बारी दोआब कैनल एक्ट बनाया था। इस एक्ट के तहत नहर बनाने के बहाने से किसानों की ज़मीन हथिया ली जाती और उन पर मनमाने कर लगाए जाते।

ब्रिटेन सरकार द्वारा किए जा रहे ज़ुल्मों के ख़िलाफ़ सरदार अजीत सिंह ने इसके ख़िलाफ़ आंदोलन छेड़ दिया। 22 मार्च, 1907 को लायलपुर (अब पाकिस्तान का हिस्सा) में एक रैली की गई। झांग स्याल नामक अख़बार के संपादक बांके दयाल ने कविता लिखी। इस आंदोलन में आन्दोलनकारियों द्वारा बांके दयाल जी की कविता इतने जोश और उत्साह के साथ गाई कि इस आन्दोलन का नाम ही 'पगड़ी सम्भाल जट्टा आन्दोलन' पड़ गया। शहीद भगत सिंह व उनके साथी भी इस गीत को गाते थे। प्रस्तुत है अपने मूल रूप में - सं.

पगड़ी सम्भाल जट्टा पगड़ी सम्भाल ओ।

हिंद सी मंदर साडा, इस दे पुजारी ओ।
झींगा होर अजे, कद तक खुआरी ओ।
मरने दी कर लै हुण तूं, छेती तैयारी ओ।
मरने तों जीणा भैड़ा, हो के बेहाल ओ।
पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा?

मन्नदी न गल्ल साडी, एह भैड़ी सरकार ओ।
असीं क्यों मन्निए वीरो, इस दी कार ओ।
होइ के कट्ठे वीरो, मारो ललकार ओ।
ताड़ी दो हत्थड़ वजदी, छैणियाँ नाल ओ।
पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा?

फ़सलां नूं खा गए कीड़े।
तन ते न दिसदे लीड़े। भुक्खाँ ने खूब नपीड़े।
रोंदे नी बाल ओ। पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा?

बन गे ने तेरे लीडर। राजे ते ख़ान बहादर।
तैनू फसौण ख़ातर। विछदे पए जाल ओ।
पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा?

सीने विच खावें तीर। रांझा तूं देश ए हीर।
संभल के चल ओए वीर। रस्ते विच खाल ओ।
पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा ?

बांके दयाल

क्रांतिकारियों की कविता: चिन्तन और सरोकार

विकास साल्याण



बेशस्त्र नहीं हैं हम, बल है हमें चरख़े का,
चरख़े से ज़मीं को हम, ता चर्ख़ गुंजा देंगे।
परवा नहीं कुछ दम की, ग़म की नहीं, मातम की,
है जान हथेली पर, एक दम में गंवा देंगे।
सीखा है नया हमने, लड़ने का यह तरीका
चलवाओ गन मशीनें, हम सीना अड़ा देंगे।

इन पंक्तियों को पढ़ते हुए लग सकता है कि ये किसी गांधीवादी कवि की होंगी लेकिन ये क्रांतिकारी अशफाक उल्ला खाँ की है जिन्हें काकोरी केस में फांसी दी गई थी। क्रांतिकारियों के बारे में एक धारणा प्रचलित है कि वे साम्राज्यवादी सरकार को उखाड़ने के लिए ईंट का जवाब पत्थर से देना जानते थे और वे महात्मा गांधी के विपरीत मत रखते थे। लेकिन उनकी कविताएं इस धारणा को पुष्ट नहीं करती।

क्रांतिकारियों के चिन्तन का साक्षात्कार हमें उनके साहित्य के माध्यम से होता है। क्रांतिकारियों का चिन्तन पराधीनता के अभिशाप, शोषण, सांप्रदायकिता, अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी, अन्धविश्वासों के विरुद्ध है। क्रांतिकारियों का चिन्तन केवल राजनीतिक आजादी तक ही सीमित नहीं था, बल्कि उसमें स्वतन्त्र भारत के स्वरुप और समाज की तरक्की के समस्त मुद्दे शामिल थे। शहीद भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां, भगवतीचरण वोहरा आदि क्रांतिकारियों का साहित्य, जेल डायरी, व अन्य दस्तावेजों के अध्ययन से पता लगता है कि क्रांतिकारियों का लक्ष्य हथियारों के आधार पर देश को आजाद कराना ही नहीं बल्कि समतामूलक शोषणविहीन समाज निर्माण की परियोजना उनके पास थी।

शहीद भगत सिंह अपने लेख 'पंजाबी की भाषा और लिपि की समस्या' में लिखते हैं, "किसी समाज अथवा देश को पहचानने के लिए उस समाज अथवा देश के साहित्य से परिचित होने की परमावश्यकता होती है, क्योंकि समाज के प्राणों की चेतना उस समाज के साहित्य में भी प्रतिच्छवित हुआ करती है।" अशफाक उल्ला खाँ अपनी गजल के माध्यम से क्रांति की ज्वाला को किस तरह जलाने की ओर इशारा करते हैं -

सता ले ऐ फलक मुझको जहाँ तक तेरा जी चाहे
सितम परवर सितम झेलुंगा शेरे-नेसेता होकर।
करूं मैं इंकलाबे दहर का शिकवा मआज अल्लाह
है तुफ मुझ पर डरूँ गर जेल से मैं नौजवां होकर

साधारण मनुष्य सुख-सुविधा, वैभव, यश पाने में ही जीवन की सार्थकता देखता है परन्तु क्रांतिकारियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण कुछ अलग था। वे अपने जीवन की सार्थकता देश के लिए शहादत में देखते थे। काकोरी केस में अशफाक उल्ला खां को जब मृत्युदंड की घोषणा हुई तो देश के लिए शहीद होने का अवसर प्राप्त होने की प्रसन्नता में फाँसी के कुछ दिन पहले अशफाक उल्ला खाँ का वजन बढ़ गया था। उन्हें देश के प्रति शहीद होने की इतनी चाहत थी कि वह नहीं चाहते थे कि अंग्रेजी सरकार उनको उम्रकैद की सजा दे। फरारी के दिनों में भी एक क्रांतिकारी साथी ने जब उनसे कहा था कि आप चाहे तो हम हिफाजत से आपको अंग्रेजी राज्य की सीमा से आपको बाहर भेज सकते है। तो अशफाक ने उत्तर दिया था। 'मैं हिन्दुस्तान से भागना नहीं चाहता। भई, किसी मुसलमान को भी तो फांसी चढ़ने दो।' 'हिन्दुओं में तो खुदीराम और कन्हाई लाल दत्त सरीखे कितने ही शहीद हो गए, पर मुस्लमानों में तो मैं अकेला हूँ। मेरे ऊपर पूरी कौम की जिम्मेदारी है।' उनकी मृत्यु से पहले का यह शेर बहुत मशहूर है।

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह,
रख दे कोई जरा सी खाके-वतन कफन में

अशफाक उल्ला खां अपनी ग़जल के माध्यम से देश के प्रति न्यौछावर होने की भावना प्रकट करते हैं

जिन्दगी बाद फ़ना मिलेगी तुझे 'हसरत'
तेरा जीना तेरे मरने की बदौलत होगा।

अशफाक उल्ला खां अपनी डायरी में लिखते है - "का़बिले-सताइश हैं वह हस्तियां जिन्होंने अपना मकसदे-ज़िन्दगी आज़ादी-ए-वतन को बना लिया और काबिले-परसतिश हैं वह माएँ जिन्होंने ऐसे बच्चे पैदा किये"। अपनी कविता में कहते है -

सर कटाने की हविस बढ गई कुछ और नसीम
बानी-ए-जुल्म हुई जब से तबीयत उसकी।
वतन हमेशा रहे शादकाम और आज़ाद,
हमारा क्या है अगर हम रहे, रहे न रहे

अशफाक अपनी डायरी में लिखते है - "देशभक्ति अपने साथ तरह-तरह की मुसीबतें और तकलीफें लेकर आती है। पर जब कोई व्यक्ति यह मार्ग चुन लेता है तो उसे ये सारी मुसीबतें आरामदायक और आनंदप्रद लगने लगती है। इसी कारण से हमने अपने वतन पर जान निछावर करने का संकल्प किया है।"

गदर आंदोलन के क्रांतिकारी अपने अखबार और परचों के माध्यम से क्रांतिकारी साहित्य प्रकाशित करते थे। शहीद करतार सिंह सराभा की कविताएं शहीद भगतसिंह व शहीद उधमसिंह जैसे क्रांतिकारियों की प्रेरणा बनी। करतार सिहं सराभा ने क्रांति के कार्य में कष्टों का उल्लेख किया है।

सेवा देश दी जिन्दड़िए बड़ी औखी,
गल्ला करनीआं ढेर सुखल्लीयां ने।
जिन्ना देश सेवा विच पैर पाया,
उन्ना लक्ख मुसीबतां झल्लियां ने।



शहीद भगत सिंह के पत्रों, लेखों और जेल डायरी में साहित्य के अनेक उद्धरणों से स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि वे साहित्य के गंभीर अध्येता थे। वे अपने समय के साहित्य से जुड़े थे। क्रांतिकारी जीवन में कष्टों व उससे प्राप्त होने वाले आनन्द को छोटे भाई कुलतार को लिखे पत्र में उल्लेख करते है -

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े-ज़फा क्या है,
हमे यह शौक़ है देखें सितम की इन्तहा क्या है।

भगत सिंह स्पष्ट तौर पर लिखते है कि हमें मतभेदों और मनभेदों को एक तरफ करके स्वाधीनता आन्दोलन में ब्रिटिश हुकुमत का इकट्ठा होकर मुकाबला करना है। वे लिखते है -

दहर से क्यों खफ़ा रहें, चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले-महफ़िल,
चराग़े-सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।

शहीद भगत सिंह भी अपना जीवन का मकसद देश के लिए शहीद होना ही मानते थे। भगत सिंह के पिता जी ने जब अंग्रेजी सरकार से उनकी फाँसी की सजा को उम्रकैद में बदलने के लिए अर्जी डाली तो उससे वह नाराज हुए। देश के लिए शहीद होने का जज्बा और चाहत अपने छोटे भाई कुलबीर को लिखे गए पत्र में दर्ज है -

हवा में रहेंगी मेरे ख्याल की बिजलियाँ
ये मुस्त-ए-ख़ाक है फ़ानी, रहे-रहे न रहे

दुर्गा भाभी को लिखे एक अन्य पत्र में वह लिखते हैं -

दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उलफ़त
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी।

काकोरी केस के शहीद क्रांतिकारी रोशन सिंह एक अच्छे कवि व साहित्यकार भी थे। रोशन सिंह ने 6 दिसंबर 1927 को काल-कोठरी से अपने एक मित्र को पत्र लिखा था, "इस सप्ताह के भीतर ही फांसी होगी, आप मेरे लिये रंज हरगिज न करें। मेरी मौत खुशी का सबब होगी। यह मौत किसी प्रकार के अफसोस के लायक नहीं है। दुनिया की कष्ट भरी यात्रा समाप्त करके मैं अब आराम की जिन्दगी जीने के लिये जा रहा हूं" पत्र के अन्त में उन्होंने यह शेर भी लिखा -

"जिन्दगी जिन्दा-दिली को जान ऐ रोशन!
वरना कितने ही यहाँ रोज फना होते हैं।"

क्रांतिकारियों को इस बात का अहसास था कि शहादत के साथ ही सामूहिक तौर पर लोगों में अंग्रेजी सरकार के प्रति रोष पैदा होगा और वह इकट्ठे होकर आजादी के संघर्ष करेंगे। इसलिए अशफाक उल्ला खां अपनी कविता में लिखते है -

दिलवाओ हमें फाँसी ऐलान से कहते हैं
खूं से ही शहीदों के हम, फौज बना देंगे।

ब्रिटेन की सरकार की पराधीनता ही एक बड़ी समस्या ही नहीं थी बल्कि उसके अन्तर्गत सामंती और जमींदारी व्यवस्था ने शोषण का ऐसा कुचक्र बना रखा था जिसमें किसान, मजदूर और गरीब व्यक्ति इस तरह फंसे थे कि पूरा जीवन ही नर्क बना हुआ था।

क्रांतिकारी बार-बार विचार करते थे कि देश तो आजाद हो जाएगा उसके बाद देश में शासन व्यवस्था क्या होगी। अगर देश आजाद होने के पश्चात भी गुलामी और शोषण की यही व्यवस्था कायम रही तो ऐसी आजादी पाकर हम क्या करेंगे। क्रांतिकारी आजादी के साथ-साथ व्यवस्था परिवर्तन पर बल देते थे वह समाज के सांमती ढाँचे को तोड़कर एक नया समाज बनाना चाहते थे जिसमें सभी मनुष्यों को बराबरी का दर्जा हो। क्रांतिकारी बटुकेश्वर दत्त कहते हैं - "समाज का पुनर्निर्माण समाजवादी ढाँचे पर करना है। जब तक यह नहीं होता और मनुष्यों का मनुष्यों द्वारा, राष्ट्रों का राष्ट्रों द्वारा शोषण बन्द नहीं होता।"

क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल अपनी कविता में कहते हैं -

दुनिया से गुलामी का मैं नाम मिटा दूंगा,
एक बार ज़माने को आज़ाद बना दूंगा।
बेचारे गरीबों से नफ़रत है जिन्हें, एक दिन,
मैं उनकी अमीरी को मिट्टी में मिला दूंगा।

क्रांति से क्रांतिकारियों का अभिप्राय था वर्तमान समाज और राष्ट्र में जो अन्याय पर आधारित व्यवस्था है उसको बदला जाए। क्रांतिकारी व्यक्तिगत्त बदले की भावना और रक्तपिपासु नहीं थे, बल्कि शोषण रहित और प्रगतिशील समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें मानवता और विश्वशांति की चर्चा हो। अशफाक उल्ला खां अपनी एक कविता में कहते है -

हम सितम लाख सहें शाले-बेदाव में।
हम रहें या ना रहें ऐसे रहें याद में।
इसकी पवाह है किसे शाद के नाशाद रहें।
हम उजड़ते हैं तो उजड़े, वतन आबाद रहे, सदा रहे।

क्रांतिकारी अच्छी तरह से समझते थे भारत की समस्या केवल उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद नहीं है बल्कि गरीबी, शोषण, अशिक्षा, सांप्रदायिकता और सामाजिक अन्याय है जिसके बिना यह देश न तो गुलामी की जंजीर तोड़ सकता और न ही आगे बढ़ सकता है। हम अगर आजाद हो भी जाएंगे तो भी आगे बढ़ने का रास्ता बेहद मुश्किल होगा। रामप्रसाद बिस्मिल अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि धनी व शिक्षित लोग देशसेवा की बजाए मौका पाकर गरीबों का शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। हमें अधिक से अधिक लोगों को शिक्षित करना चाहिए और हमें क्रांतिकारी संगठन बनाने की अपेक्षा श्रमजीवी और कृषकों के संगठन बनाने का प्रयत्न करके उनको ज़मीदारों तथा रईसों के अत्याचार से बचाने का प्रयास करना चाहिए। आगे वह लिखते हैं - जिस देश में छः करोड़ मनुष्यों को अछूत समझा जाता हो, उस स्वाधीन होने का अधिकार ही क्या है। इसी के साथ स्त्रियों की दशा भी इतनी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे पैर की जूती व घर की गुडिया न समझी जाएँ। रामप्रसाद बिस्मिल समाज में सबको बराबरी का अधिकार देने पर जोर देते थे। वे अपनी कविता के माध्यम से कहते है -

बंदे हैं ख़ुदा के सब, हम सब ही बराबर हैं,
ज़र और मुफ़लिसी का झगड़ा ही मिटा दूंगा।
जो लोग ग़रीबों पर करते हैं सितम नाहक़,
गर दम है मेरा क़ायम, गिन-गिन के सज़ा दूंगा।

हिम्मत को ज़रा बांधो, डरते हो ग़रीबो क्यों?
शैतानी क़िले में अब मैं आग लगा दूंगा।

1857 की क्रांति में हिन्दू-मुस्लिमों ने इकट्ठे होकर स्वतन्त्रता की मशाल जलाई थी जिससे अंग्रेजी साम्राज्यवादी सरकार घबरा गई थी और तब से उन्होंने फूट-डालो, राज-करो की नीति को अपनाया था। जिसका परिणाम हमें बंगाल विभाजन के रूप में देखने को मिला। हिन्दू-मुस्लिमों के आपसी झगडों को अब राजनीति द्वारा उसे सांप्रदायिकता की शक्ल दे दी गई थी। क्रांतिकारी इसे देश के लिए सबसे बड़ी समस्या मानते थे भगत सिंह ने साम्प्रदायिकता पर एक आलेख लिखकर देशवासियों से आह्वान किया कि जब तक यह खत्म नहीं होगे तब तक आप स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर पाओगे। अशफाक उल्ला खां अपनी ग़जल के शेर में लिखते है

ये झगड़े और बखेड़े मेट कर आपस में मिल जाओ,
ये तफरीके-अबस है तुम में हिन्दू और मुस्लमां की।

किसी भी देश की प्रगति और विकास का पैमाना उस देश के युवकों पर निर्भर करता है। सभी क्रांतिकारी नौजवान थे और देश को आजाद कराने के लिए युवाओं को अपने दल में शामिल करना चाहते थे। भगत सिंह कहते थे कि हम नहीं चाहते नौजवान बम और पिस्तौल उठाएं। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी महत्वपूर्ण काम है। रामप्रसाद बिस्मिल भी इसी प्रकार युवकों को नैतिक शिक्षा देते हुए अपनी आत्मकथा में लिखते है - "भारतवर्ष में सबसे बड़ी कमी यही है कि इस देश के युवकों में शहरी जीवन व्यतीत करने की बान पड गई है। साफ-सुथरे कपड़े पहनना, विदेशी सुसज्जित बाजारों में घूमने, मेज-कुर्सी पर बैठने तथा विलासिता में फँसे रहने के आदी हो गए है। ग्रामीण जीवन को वे नितान्त नीरस तथा शुष्क समझते हैं। उनकी समझ में ग्रामों में अर्धसभ्य या जंगली लोग निवास करते हैं। किसी ग्रामवासी से बात करने में उनका दिमाग थक जाता है।" बिस्मिल बार-बार कहते है कि हमें गाँवों कि ओर लौटना होगा और गाँवों में चेतना निर्माण के कार्य को आगे बढ़ाकर ही हमें पूर्ण

"हिन्दुस्तानी भाइयो! आप चाहे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को मानने वाले हों, देश के काम में साथ दो। व्यर्थ आपस में न लड़ो। रास्ते चाहे अलग हों, लेकिन उद्देश्य सबका एक है। सभी कार्य एक ही उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं, फिर यह व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े क्यों?"

- अशफाक उल्ला खान

स्वाधीनता मिल सकती है। रामप्रसाद बिस्मिल युवाओं से क्रांति का आह्वान करते हुए लिखते हैं -

नौजवानो ! यही मौका है उठो खुल खेलो,
खिदमते-कौम में जो आये बला सब झेलो,
देश के वास्ते सब अपनी जवानी दे दो,
फिर मिलेंगी न ये माता की दुआएँ ले लो,
देखें कौन आता है ये फ़र्ज़ बजा लाने को ?

अशफाक उल्ला खां अपने भतीजों को लिखे पत्र में कहते हैं कि - जब भी तुम मेरा चित्र देखो तो तुम्हें अपने कर्तव्यों का अहसास होना चाहिए। तुम्हारा खुदा मददगार है। तुम्हें समृद्धशाली बनाए, तुम्हे उच्च शिक्षा दिलाए और खानदान पर गर्व करने योग्य बनाए।

किए थे काम हमने भी जो कुछ भी हम से बन आए
ये बातें जब की हैं आज़ाद थे और था शबाब अपना।
मगर अब तो जो कुछ भी है उम्मीदे सब वो तुम से है।
जवाँ लो हो लबे-बाम आ चुका है आफताब अपना।

एक अन्य शेर में विद्यार्थियों से अशफाक उल्ला खां कहते है

उठो-उठो सो रहे हो नाहक पयामे-बाँगे-जरस तो सुन लो,
बढ़ो कि कोई बुला रहा है निशाने-मंजिल दिखा-दिखाकर

क्रांतिकारियों का साहित्य इस बात को प्रमाणित करता है कि वे सिर्फ बम व हथियार के बल पर देश को आजाद नहीं करवाना चाहते थे बल्कि वर्गविहीन शोषणरहित समाज का निर्माण करना चाहते थे। अशफाक उल्ला खाँ कहते हैं

ख्याल आता है जिस दम दिल में चुभता है सिनां होकर
रहे क्यों कब्जा-ए-अगियार में हिन्दोस्तां होकर।
शहीदाने वतन का खून एक दिन रंग लायेगा,
चमन में फूट निकलेगा यह बरगे-अर्गवा होकर।

"अब देशवासियों के सामने यही प्रार्थना है कि यदि उन्हें हमारे मरने का जरा भी अफसोस है तो वे जैसे भी हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करें - यही हमारी आखिरी इच्छा थी, यही हमारी यादगार हो सकती है।

- रामप्रसाद बिस्मिल



रामप्रसाद बिस्मिल

आजादी

इलाही ख़ैर! वो हरदम नई बेदाद करते हैं,
हमें तोहमत लगाते हैं, जो हम फ़रियाद करते हैं
कभी आज़ाद करते हैं, कभी बेदाद करते हैं
मगर इस पर भी हम सौ जी से उनको याद करते हैं
असीराने-क़फ़स से काश, यह सैयाद कह देता
रहो आज़ाद होकर, हम तुम्हें आज़ाद करते हैं
रहा करता है अहले-ग़म को क्या-क्या इंतज़ार इसका
कि देखें वो दिले-नाशाद को कब शाद करते हैं
यह कह-कहकर बसर की, उम्र हमने क़ैदे-उल्फ़त में
वो अब आज़ाद करते हैं, वो अब आज़ाद करते हैं
सितम ऐसा नहीं देखा, जफ़ा ऐसी नहीं देखी,
वो चुप रहने को कहते हैं, जो हम फ़रियाद करते हैं
यह बात अच्छी नहीं होती, यह बात अच्छी नहीं करते
हमें बेकस समझकर आप क्यों बरबाद करते हैं?
कोई बिस्मिल बनाता है, जो मक़तल में हमें 'बिस्मिल'
तो हम डरकर दबी आवाज़ से फ़रियाद करते हैं

तराना

बला से हमको लटकाए अगर सरकार फांसी से।
लटकते आए अक्सर पैकरे-ईसार फांसी से।

लबे-दम भी न खोली ज़ालिमों ने हथकड़ी मेरी,
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फांसी से।

खुली है मुझको लेने के लिए आग़ोशे आज़ादी,
ख़ुशी है, हो गया महबूब का दीदार फांसी से।

कभी ओ बेख़बर तहरीक़े-आज़ादी भी रुकती है?
बढ़ा करती है उसकी तेज़ी-ए-रफ़्तार फांसी से।

यहां तक सरफ़रोशाने-वतन बढ़ जाएंगे क़ातिल,
कि लटकाने पड़ेंगे नित मुझे दो-चार फांसी से।

दुनिया से गुलामी का मैं नाम मिटा दूंगा

दुनिया से गुलामी का मैं नाम मिटा दूंगा।
एक बार ज़माने को आज़ाद बना दूंगा।

बेचारे ग़रीबों से नफ़रत है जिन्हें, एक दिन,
मैं उनकी अमरी को मिट्टी में मिला दूंगा।

यह फ़ज़ले-इलाही से आया है ज़माना वह,
दुनिया की दग़ाबाज़ी दुनिया से उठा दूंगा।

ऐ प्यारे ग़रीबो! घबराओ नहीं दिल में,
हक़ तुमको तुम्हारे, मैं दो दिन में दिला दूंगा।

बंदे हैं ख़ुदा के सब, हम सब ही बराबर हैं,
ज़र और मुफ़लिसी का झगड़ा ही मिटा दूंगा।

जो लोग ग़रीबों पर करते हैं सितम नाहक़,
गर दम है मेरा क़ायम, गिन-गिन के सज़ा दूंगा।

हिम्मत को ज़रा बांधो, डरते हो ग़रीबों क्यों?
शैतानी क़िले में अब मैं आग लगा दूंगा।

ऐ 'सरयू' यक़ीं रखना, है मेरा सुख़न सच्चा,
कहता हूं, जुबां से जो, अब करके दिखा दूंगा।



अशफ़ाक़उल्ला ख़ाँ

कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखाएंगे

कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखाएंगे,
आज़ाद ही हो लेंगे, या सर ही कटा देंगे।

हटने के नहीं पीछे, डरकर कभी जुल्मों से,
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढ़ा देंगे।

बेशस्त्र नहीं हैं हम, बल है हमें चरख़े का,
चरख़े से ज़मीं को हम, ता चर्ख़ गुंजा देंगे।

परवा नहीं कुछ दम की, ग़म की नहीं, मातम की,
है जान हथेली पर, एक दम में गंवा देंगे।

उफ़ तक भी जुबां से हम हरगिज़ न निकालेंगे,
तलवार उठाओ तुम, हम सर को झुका देंगे।

सीखा है नया हमने लड़ने का यह तरीका,
चलवाओ गन मशीनें, हम सीना अड़ा देंगे।

दिलवाओ हमें फांसी, ऐलान से कहते हैं,
ख़ूं से ही हम शहीदों के, फ़ौज बना देंगे।

मुसाफ़िर जो अंडमान के, तूने बनाए, ज़ालिम,
आज़ाद ही होने पर, हम उनको बुला लेंगे।

किए थे काम हमने भी जो कुछ हमसे बन आए

किए थे काम हमने भी जो कुछ हमसे बन आए,
ये बातें जब की हैं आजाद थे और था शबाब अपना।

मगर अब तो जो कुछ भी है उम्मीदें बस वह तुमसे हैं,
जवां तुम हो लब-ए-बाम आ चुका है आफ़ताब अपना।
(फांसी से तीन दिन पहले लिखे खत में अपने भतीजों को लिखा)

बुजदिलों को ही सदा मौत से डरते देखा

बुजदिलों को ही सदा मौत से डरते देखा,
गो कि सौ बार उन्हें रोज़ ही मरते देखा।

मौत से वीर को, हमने नहीं डरते देखा,
तख्ता-ए-मौत पै भी खेल ही करते देखा।

मौत को एक बार जब आना है, तो डरना क्या है,
हम सदा खेल ही समझा किये, मरना क्या है।

वतन हमेशा रहे शादकाम, औ' आजाद,
हमारा क्या है अगर हम रहे रहे न रहे।

"जिनके हृदय में भारतवर्ष की सेवा के भाव उपस्थित हों या जो भारतभूमि को स्वतंत्र देखने या स्वाधीन बनाने की इच्छा रखता हो, उसे उचित है कि ग्रामीण संगठन करके कृषकों की दशा सुधारकर, उनके हृदय से भाग्य-निर्माता को हटाकर उद्योगी बनने की शिक्षा दे। कल कारखाने, रेलवे, जहाज तथा खानों में जहाँ कहीं श्रमजीवी हों, उनकी दशा को सुधारने के लिए श्रमजीवियों के संघ की स्थापना की जाए, ताकि उनको अपनी अवस्था का ज्ञान हो सके और कारखानों के मालिक मनमाने अत्याचार न कर सकें और अछूतों को, जिनकी संख्या इस देश में लगभग छह करोड़ है, पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबंध हो तथा उनको सामाजिक अधिकारों में समानता मिले। जिस देश में छह करोड़ मनुष्य अछूत समझे जाते हों, उस देश के वासियों को स्वाधीन बनने का अधिकार ही क्या है? इसी के साथ ही साथ स्त्रियों की दशा भी इतनी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे पैर की जूती तथा घर की गुड़िया न समझी जाएँ। इतने कार्य हो जाने के बाद जब भारत की जनता अधिकांश शिक्षित हो जाएगी, वे अपनी भलाई-बुराई समझने के योग्य हो जाएँगे, उस समय प्रत्येक आन्दोलन जिसका शिक्षित जनता समर्थन करेगी, अवश्य सफल होगा।"

- रामप्रसाद बिस्मिल



जगदंबा प्रसाद मिश्र
'हितैषी'

शहीदों की चिताओं पर

उरूजे कामयाबी पर कभी हिंदोस्ताँ होगा।
रिहा सैयाद के हाथों से अपना आशियाँ होगा।।

चखाएँगे मज़ा बर्बादी-ए-गुलशन का गुलचीं को।
बहार आ जाएगी उस दम जब अपना बाग़बाँ होगा।

ये आए दिन की छेड़ अच्छी नहीं ऐ ख़ंजर-ए-क़ातिल।
पता कब फ़ैसला उनके हमारे दरमियाँ होगा।।

जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज़।
न जाने बाद मुर्दन मैं कहाँ औ तू कहाँ होगा।।

वतन के आबरू का पास देखें कौन करता है।
सुना है आज मक़तल में हमारा इम्तहाँ होगा।।

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाक़ी निशाँ होगा।।

कभी वह दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही ज़मीं होगी और अपना आसमाँ होगा।।

इंकलाब जिंदाबाद



आजादी के आंदोलन का प्रिय नारा इंक़लाब ज़िंदाबाद 1921 में उर्दू शायर मौलाना हसरत मोहानी ने दिया। ये कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के संस्थापकों में से थे। शहीद भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने असेंबली में बम फेंका तो उसके साथ पर्चे भी फेंके उस पर इंकलाब जिंदाबाद का नारा लिखा था। क्रांतिकारियों की भावनाएं इसी नारे में व्यक्त होती थी। इंकलाब का अर्थ है आमूलचूल परिवर्तन।



राष्ट्रीयता

गणेशशंकर विद्यार्थी

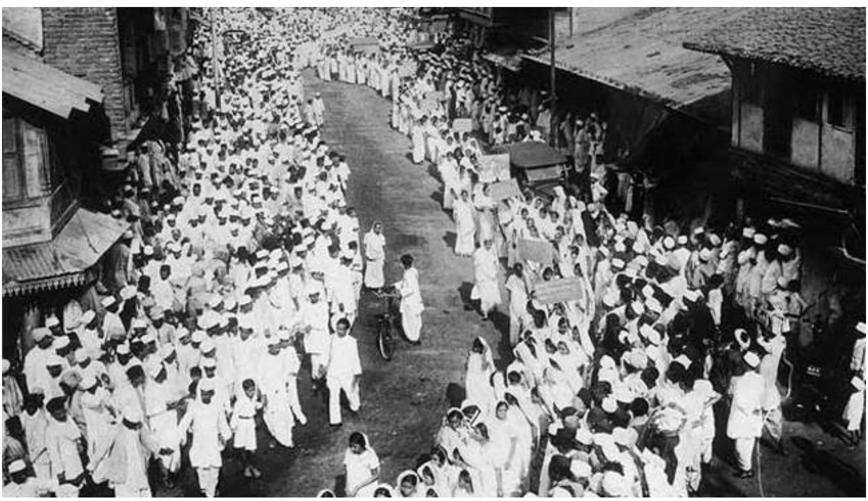
(गणेशशंकर विद्यार्थी का यह लेख प्रथम विश्वयुद्ध का पहला वर्ष (1914) समाप्त होते-न होते लिखा गया और 21 जून, 1915 के साप्ताहिक 'प्रताप' में प्रकाशित हुआ था। 25 वर्षीय युवक गणेशशंकर उस वक्त युद्धोन्माद की छाया में भी राष्ट्रीयता और जातीयता, राष्ट्रीयता और धार्मिकता, राष्ट्रीयता और सामाजिक के बीच के फर्क को साफ-साफ देख रहे थे। - सं.)

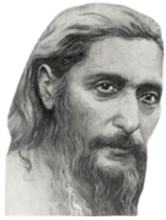
देश में कहीं-कहीं राष्ट्रीयता के भाव के समझने में गहरी और भद्दी भूल की जा रही है। आये दिन हम इस भूल के अनेकानेक प्रमाण पाते हैं। यदि इस भाव के अर्थ भलीभांति समझ लिये गये होते, तो इस विषय में बहुत सी अनर्गल और अस्पष्ट बातें सुनने में न आतीं। राष्ट्रीयता जातीयता नहीं है। राष्ट्रीयता धार्मिक सिद्धान्तों का दायरा नहीं है। राष्ट्रीयता सामाजिक बन्धनों का घेरा नहीं है। राष्ट्रीयता का जन्म देश के स्वरूप से होता है। उसकी सीमाएँ देश की सीमाएँ हैं। प्राकृतिक विशेषता और भिन्नता देश को संसार से अलग और स्पष्ट करती है और उसके निवासियों को एक विशेष बन्धन-किसी सादृश्य के बन्धन-से बाँधती है। राष्ट्र पराधीनता के पालने में नहीं पलता। स्वाधीन देश ही राष्ट्रों की भूमि है, क्योंकि पुच्छविहीन पशु हों, तो हों, परन्तु अपना शासन अपने हाथों में न रखने वाले राष्ट्र नहीं होते। राष्ट्रीयता का भाव मानव-उन्नति की एक सीढ़ी है। उसका उदय नितान्त स्वाभाविक रीति से हुआ। यूरोप के देशों में वह सबसे पहले जन्मा। मनुष्य उसी समय तक मनुष्य है, जब तक उसकी दृष्टि के सामने कोई ऐसा ऊँचा आदर्श है, जिसके लिए वह अपने प्राण तक दे सके। समय की गति के साथ आदर्शों में परिवर्तन हुए। धर्म के आदर्श के लिए

लोगों ने जान दी और तन कटाया, परन्तु संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों के संघर्षण, एक-एक देश में अनेक धर्मों के होने तथा धार्मिक भावों की प्रधानता से देश के व्यापार, कला-कौशल और सभ्यता की उन्नति में रुकावट पड़ने से, अन्त में, धीरे-धीरे धर्म का पक्षपात कम हो चला और देशप्रेम का स्वाभाविक आदर्श लोगों के सामने आ गया। जो प्राचीनकाल में धर्म के नाम पर कटते-मरते थे, आज उनकी सन्तति देश के नाम पर मरती है। पुराने अच्छे थे, या ये नए, इस पर बहस करना फिजूल है, पर उनमें भी जीवन था और इनमें भी जीवन है। वे भी त्याग करना जानते थे और ये भी, और ये दोनों उन अभागों से लाख दर्जे अच्छे और सौभाग्यवान हैं, जिनके सामने कोई आदर्श नहीं, और जो हर बात में मौत से डरते हैं। ये पिछले आदमी अपने देश के बोझ और अपनी माता की कोख के कलंक है।

देशप्रेम का भाव इंग्लैण्ड में उस समय उदय हो चुका था, जब स्पेन के कैथोलिक राजा फिलिप ने इंग्लैण्ड पर अजेय जहाजी बेड़े आरमेडा' द्वारा चढ़ाई की थी, क्योंकि इंग्लैण्ड के कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट, दोनों प्रकार के ईसाइयों ने देश के शत्रु का एक-सा स्वागत किया था। फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने राष्ट्रीयता को पूरे वैभव से खिला दिया। इस प्रकाशमान रूप को देखकर गिरे हुए देशों को आशा का मधुर सन्देश मिला। 19वीं शताब्दी राष्ट्रीयता की शताब्दी थी। वर्तमान जर्मनी का उदय इसी शताब्दी में हुआ। पराधीन इटली ने स्वेच्छाचारी आस्ट्रिया के बन्धनों से मुक्ति पायी, यूनान को स्वाधीनता मिली और बालकन के अन्य राष्ट्र भी कब्रों से सिर निकालकर उठ पड़े। गिरे हुए पूर्व ने भी अपनी विभूति दिखायी बाहर वाले उसे दोनों हाथों से लूट रहे थे। उसे चैतन्यता प्राप्त हुई। उसने अंगड़ाई ली और चोरों के कान खड़े हो गये। उसने संसार की गति की ओर दृष्टि फेरी देखा, संसार को एक नया प्रकाश मिल गया है, और जाना कि स्वार्थपरायणता के इस अन्धकार को बिना उस प्रकाश के पार करना असम्भव है। उसके मन में हिलोरें उठीं, और अब हम उन हिलोरों के रत्न देख रहे हैं। जापान एक रत्न है-ऐसा चमकता हुआ कि राष्ट्रीयता उसे कहीं भी पेश कर सकती है। लहर रुकी नहीं बढ़ी, और खूब बढ़ी। अफीमची चीन को उसने जगाया और पराधीन भारत को उसने चेताया। फारस में उसने जागृति फैलायी और एशिया के जंगलों और खोड़ों तक में राष्ट्रीयता की प्रतिध्वनि इस समय किसी-न-किसी रूप में में उसने पहुँचायी। यह संसार की लहर है। इसे रोका नहीं जा सकता। वे स्वेच्छाचारी अपने हाथ तोड़ लेंगे; जो उसे रोकेंगे, और उन मुर्दों की खाक का भी पता नहीं लगेगा, जो इसके सन्देश को नहीं सुनेंगे भारत में हम राष्ट्रीयता की पुकार सुन चुके हैं। हमें भारत के उच्च और उज्ज्वल भविष्य का विश्वास है। हमें विश्वास है कि हमारी बाढ़ किसी के रोके नहीं रुक सकती। रास्ते में रोकने वाली चट्टानें आ सकती हैं। बिना चट्टानों के तो कोई रास्ता बड़ा और महत्त्व का रास्ता नहीं हो सकता। पर ये चट्टानें पानी की किसी बाढ़ को नहीं रोक सकतीं। परन्तु एक बात है, हमें जान-बूझकर मूर्ख नहीं बनना चाहिये। ऊटपटाँग रास्ते नहीं

नापने चाहिये। कुछ लोग 'हिन्दू राष्ट्र'-'हिन्दू राष्ट्र' चिल्लाते हैं। हमें क्षमा किया जाये, यदि हम कहें-नहीं, हम इस बात पर जोर दें कि वे एक बड़ी भारी भूल कर रहे हैं और उन्होंने अभी तक 'राष्ट्र' शब्द के अर्थ ही नहीं समझे। हम भविष्यवक्ता नहीं, पर अवस्था हमसे कहती है कि अब संसार में हिन्दू राष्ट्र' नहीं हो सकता, क्योंकि राष्ट्र का होना उसी समय सम्भव है, जब देश का शासन देश वालों के हाथ में हो। और यदि मान लिया जाये कि आज भारत स्वाधीन हो जाये इंग्लैंड उसे औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे, तो भी हिन्दू ही भारतीय राष्ट्र के सब कुछ होंगे और जो ऐसा समझते हैं हृदय से या केवल लोगों के प्रसन्न करने के लिए भूल कर रहे हैं और देश को हानि पहुँचा रहे हैं। वे लोग भी इसी प्रकार की भूल कर रहे हैं, जो टर्की या काबुल, मक्का या जेद्दा का स्वप्न देखते हैं, क्योंकि ये उनकी जन्मभूमि नहीं, और इसमें कुछ भी कटुता न समझी जानी चाहिये यदि हम ये कहें कि उनकी कब्रें इसी देश में बनेंगी और उनके मर्सिये-यदि वे इस योग्य होगे तो इसी देश में गाये जायेंगे। परन्तु हमारा प्रतिपक्षी-नहीं; राष्ट्रीयता का विपक्षी-मुँह बिचकाकर कह सकता है कि राष्ट्रीयता स्वार्थों की खान है। देख तो इस महायुद्ध को, और इनकार करने का साहस करो कि संसार के राष्ट्र पक्के स्वार्थी नहीं हैं? हम इस विपक्षी का स्वागत करते हैं। परन्तु संसार की किस वस्तु में बुराई और भलाई दोनों बातें नहीं हैं? लोहे से डॉक्टर का घाव चीरने वाला चाकू और रेल की पटरियाँ बनती हैं, और इसी लोहे से हत्यारे का छुरा और लड़ाई की तोपें भी बनती हैं। सूर्य का प्रकाश फूलों को रंग-बिरंगा बनाता है, पर वह बेचारा उस मुर्दा लाश का क्या करे, जो उसके लगते ही सड़कर बदबू देने लगती है। हम राष्ट्रीयता के अनुयायी है, पर वही हमारी सब कुछ नहीं, वह केवल हमारे देश की उन्नति का उपाय-भर है।





सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

वर दे वीणावादिनी वर दे

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे !

वर दे, वीणावादिनि वर दे।

भारती वंदना

भारति जय विजय करे!
कनक शस्य कमल धरे!

लंका पदतल - शतदल
गर्जितोर्मि सागर - जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे!

तरु तृण वन लता वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल- कण
धवल धार हार गले!

मुकुट शुभ्र हिम - तुषार
प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख - शतरव मुखरे!



सोहन लाल द्विवेदी

ध्वजा-गीत

हम नन्हें नन्हें बच्चे हैं,
नादान उमर के कच्चे हैं,
पर, अपनी धुन के सच्चे हैं,
जननी की जय जय गायेंगे।
भारत की ध्वजा उड़ायेंगे।

अपना पथ कभी न छोड़ेंगे,
अपना प्रण कभी न तोड़ेंगे,
हिम्मत से नाता जोड़ेंगे,
हम हिमिगिरि पर चढ़ जायेंगे।
भारत की वजा उड़ायेंगे।

हम भय से कभी न डोलेंगे,
अपनी ताकत को तोलेंगे,
माता के बन्धन खोलेंगे,
अपना शिर भेंट चढ़ायेंगे।
भारत की ध्वजा उड़ायेंगे।

जय राष्ट्रीय निशान!

जय राष्ट्रीय निशान!
जय राष्ट्रीय निशान!!!
लहर लहर तू मलय पवन में,
फहर फहर तू नील गगन में,
छहर छहर जग के आंगन में,
सबसे उच्च महान!
सबसे उच्च महान!
जय राष्ट्रीय निशान!!

जब तक एक रक्त कण तन में,
डिगे न तिल भर अपने प्रण में,
हाहाकार मचावें रण में,
जननी की संतान
जय राष्ट्रीय निशान!
मस्तक पर शोभित हो रोली,
बढ़े शूरवीरों की टोली,
खेलें आज मरण की होली,
बूढ़े और जवान
बूढ़े और जवान!

जय राष्ट्रीय निशान!

मन में दीन-दुःखी की ममता,
हममें हो मरने की क्षमता,
मानव मानव में हो समता,
धनी गरीब समान
गूंजे नभ में तान
जय राष्ट्रीय निशान!

तेरा मेरा मेरुदंड हो कर में,
स्वतन्त्रता के महासमर में,
वज्र शक्ति बन व्यापे उस में,
दे दें जीवन-प्राण!
दे दें जीवन प्राण!
जय राष्ट्रीय निशान!!

बढ़े चलो, बढ़े चलो

न हाथ एक शस्त्र हो,
न हाथ एक अस्त्र हो,
न अन्न वीर वस्त्र हो,
हटो नहीं, डरो नहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

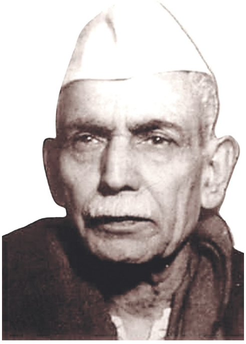
रहे समक्ष हिम-शिखर,
तुम्हारा प्रण उठे निखर,
भले ही जाए जन बिखर,
रुको नहीं, झुको नहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

घटा घिरी अटूट हो,
अधर में कालकूट हो,
वही सुधा का घूंट हो,
जिये चलो, मरे चलो,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

गगन उगलता आग हो,
छिड़ा मरण का राग हो,
लहू का अपने फाग हो,
अड़ो वहीं, गड़ो वहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

चलो नई मिसाल हो,
जलो नई मिसाल हो,
बढ़ो नया कमाल हो,
झुको नही, रूको नहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।

अशेष रक्त तोल दो,
स्वतंत्रता का मोल दो,
कड़ी युगों की खोल दो,
डरो नहीं, मरो नहीं,
बढ़े चलो, बढ़े चलो।



माखनलाल चतुर्वेदी

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक!
मातृ-भूमि पर शीश-चढ़ाने, जिस पथ पर जावें वीर अनेक!

सन् 1922 में लिखी 'पुष्प की अभिलाषा' माखनलाल चतुर्वेदी के नाम का पर्याय बन गई है। इसमें कोई दो मत नहीं कि इस कविता में कवि का त्याग, उत्सर्ग और राष्ट्र प्रेम की भावनाएं पूरी सशक्तता के साथ व्यक्त हुई है। कवि ने पुष्प के माध्यम से अपने जीवन की अभिलाषा तो व्यक्त की ही है, इसके साथ ही कवि के रूप में भी उन्होंने कविता का धर्म भी स्पष्ट किया है। इस कविता में कवि के जीवन की एकमात्र अभिलाषा अपने राष्ट्र के लिए स्वयं को बलिदान करने की है। इस कविता की जो एक विशेष बात है, वह यह कि इसमें कवि ने तीन उन अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धियों को अस्वीकार किया है, जिन्हें कोई व्यक्ति सामान्यतया पाना चाहता है। कवि अपना जीवन शृंगार के सुख और ऐश्वर्य में डुबोना नहीं चाहता। कवि यह भी नहीं चाहता कि वह शासक वर्ग से संबद्ध होकर विशिष्ट बन जाए। यहां तक कि उसे मोक्ष तक की अभिलाषा नहीं है । न तो उसमें भोग की कामना है न ही स्वयं को विशिष्ट समझने का भाव। वह नितान्त सहज और सामान्य बना रहना चाहता है। वह तो उस पथ पर बिछ जाना चाहता है जिस रास्ते से होकर बलिदानी गुजरते हैं। इससे उसकी दो इच्छाएं पूरी होंगी। पहली तो उसे इन वीरों के चरण-स्पर्श का सौभाग्य मिलेगा। दूसरी यह कि वह उन वीरों के पैरों के नीचे आकर उनके पथ की कठोरता को कुछ कम करने में अपना योगदान दे सकेगा। 'पुष्प की अभिलाषा' में कवि का यह भाव भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होता है कि काव्य को शृंगार, राज दरबार या भक्ति का आश्रय छोड़कर जीवन-संघर्ष के गीत लिखने चाहिए और स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान उनकी यह कविता अत्यन्त लोकप्रिय रही है तथा अनेक युवाओं के कण्ठों में इसे सम्मानित स्थान प्राप्त किया।" - डा. शंकर दयाल शर्मा

(साभार - राष्ट्रकवि पं. माखन लाल चतुर्वेदी, महात्मा गांधी 125वां जन्म वर्ष समारोह समिति , मध्यप्रदेश)



वह मशाल जिसके प्रकाश की किरणों से गुलामी का अंधेरा कट रहा था

सुधा चौहान

बुन्देले हरबोलों ने तो अपने सीमित क्षेत्र में, झांसी की रानी ने अंग्रेज़ों से जो घमासान युद्ध किया था, उसका कड़खा गा-गा कर गाँव-गाँव में अलख जगाया था। सुभद्रा ने लक्ष्मीबाई की वीर गाथा को उसके यशस्वी उत्सर्ग को अपनी संगीतमयी तरल ओजस्विनी कविता में आधुनिक युग के आल्हा के रूप में ढाल दिया। उन्होंने अपनी 'झांसी की रानी' नामक कविता में लक्ष्मीबाई की स्वाधीनता की लड़ाई को, उसके सरल, मानवीय जीवनवृत्त को कल-कल, छल-छल बहते हुए से छन्द में बाँधा है। लक्ष्मीबाई के जीवन की घटनाएं और उसके साथ ही तत्कालीन देश-दशा या दुर्दशा का वर्णन, और जातीय स्वाभिमान की प्रतिष्ठापना की अदम्य लालसा, सभी बातें एक दूसरे में घुली-मिली-सी, छन्द के प्रवाह में क्षिप्र गति से बहती चली आती हैं। न कथा के प्रवाह में कहीं कोई रुकावट आती है, न छन्द की गति में किसी तरह का दोष। इस कविता की सहज सरल भाषा और कथाक्रम की अनवरत गति ने इसे एक अद्भुत छन्दमयता दे दी है। इस कविता के विषय में बिना किसी अत्युक्ति के यह कहा जा सकता है, कि जो भी हिन्दी पढ़ना जानता है उसने इसे अवश्य पढ़ा होगा और इसकी कुछ पंक्तियाँ उसकी स्मृति में चिपकी रह गयी होंगी।

आधुनिक हिन्दी कविता में शायद ऐसा यह एक अकेला वीर गाथा काव्य है, या पवाड़ा है, जो लोकगीत के समान लोक-मानस का अंग बन गया है।... इस कविता ने लोक मानस की दबी हुई आकांक्षाओं को उनके मन में सोये से साहस और त्याग के गुणों को फिर से उकसा दिया था। जातीय गौरवशाली इतिहास की परम्परा से जनता के मन को जोड़ा था। इसी तरह

की ओजस्विनी स्वयंस्फूर्त (inspired) कविता में जातीय समन्वय की क्षमता बीज छिपे रहते हैं, जो अनजाने ही इतिहास को नई दिशा देने की उसे नया मोड़ देने की भूमिका में अपना भी सहयोग दे जाते हैं। उस समय जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन अपने उठान पर था. झांसी की रानी की कविता को सुनकर न जाने कितने मनों में स्वाधीन होने की आकांक्षा जाग उठी होगी। न जाने कितनी छातियों में त्याग, उत्सर्ग, बलिदान और शौर्य के उदात्त भाव जागे होंगे।

'झांसी की रानी' कविता वह मशाल थी, जिसके प्रकाश की किरणों से गुलामी का अंधेरा कट रहा था। सुभद्रा के हृदय का देश-प्रेम कविता के माध्यम से न जाने कितने दिलों में भी देश प्रेम की लौ जला देता था। सुभद्रा के विषय में बोलते हुए एक बार भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने बताया कि अपने बचपन में जब वे पंजाब में विद्यार्थी थे, तब पहली बार उन्होंने 'झांसी की रानी पढ़ी थी। उस कविता ने उस किशोर मन को इतना प्रभावित किया था कि वे चाहते थे कि हाथों में कड़े पहनकर, एक लकड़ी से उन्हें बजाते हुए वे खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी', गाते हुए गाँव-गाँव में घूमें, वैसे ही जैसे वहाँ के लोकगीत गायक अपने गीतों को गाते हुए घूमते हैं।

लक्ष्मीबाई का जीवन चरित्र, उसके बचपन से लेकर मृत्यु पर्यन्त, इस कविता का वर्ण्य विषय है। जिस प्रकार प्रज्वलित दीप-शिखा-सा लक्ष्मीबाई का जीवन अल्पायु था उसी प्रकार की ओजस्विनी क्षिप्र गतिशील यह कविता है। बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी से खेलने वाली बालिका, अपने खेलों से ही तत्कालीन समाज की मनोदशा दिखा देती है। जब लड़की शिकार खेलती है, सैन्य प्रशिक्षण में ही उसकी शिक्षा और शौक का समन्वय है, तो उसका भविष्य तो स्वयं प्रज्वलित मशाल जैसा स्पष्ट है। वीरता की वैभव के साथ सगाई हुई और लक्ष्मीबाई रानी बनकर वीर बुन्देलों की विरुदावलि-सी झांसी में आ गयी। शादी के कुछ वर्ष बाद ही राजा निस्सन्तान मर गए।

यह वह समय था जब कि लार्ड डलहौज़ी, छल-बल से कूटनीति से अंग्रेजी साम्राज्य को पूरे हिन्दुस्तान में फैला देने के कौशल में लगा था। उसे यह मौका मिला और उत्तराधिकारी विहीन झांसी के राज्य का उत्तराधिकारी बनकर ब्रिटिश राज्य झांसी पहुंच गया। लक्ष्मीबाई इतनी आसानी से पराधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। दिल्ली में, अवध में, नागपुर में दक्षिण की रियासतों में, सभी जगह, विस्तार पाती अंग्रेजी साम्राज्य नीति के विरुद्ध लोगों का असन्तोष उचित नेतृत्व की राह देख रहा था। उसका विस्फोट 1857 के सिपाही विद्रोह में हुआ। लक्ष्मीबाई उस सिपाही विद्रोह की सबसे तेजस्विनी नेता थी। उसके शौर्य और बलिदान ने अपने साथियों से ही नहीं, अपने दुश्मन अंग्रेज़ों से भी प्रशंसा पाई। अन्याय के विरुद्ध सिर उठाकर खड़े होने की हिम्मत, उससे लोहा लेने की हिम्मत, चाहे अन्यायी कितना ही प्रबल क्यों न हो, जितना साहस मांगती है, उतना ही दूसरों में साहस का संचार करने की क्षमता भी

रखती है। कुल तेईस वर्ष की अल्पायु में लक्ष्मीबाई का बलिदान एक शाश्वत ज्योति स्तम्भ-सा अंधेरे मनों को राह दिखाता रहेगा।

डेढ़-दो सौ बरस के विदेशी शासन के बाद देश में वैसा ही अंधेरा फिर छा गया था। उस समय उन धुंधलाई आँखों को इस ज्योति स्तम्भ की याद दिलाना बहुत जरूरी था। यह समय ऐसा था जब स्वयं सुभद्रा स्वदेशमय हो रही थीं, देश भक्ति और जन-जागृति ही उनका जीवन था, इसी कारण शायद लक्ष्मीबाई के प्रेरणादायक उत्सर्ग की गाथा वे इतनी ओजस्विनी भाषा में लिख सकी।

सक्रिय रूप से देश का काम करने वाला देश भक्त यदि लेखक भी हो तो उसके लेखन में उच्छवास की जगह शायद ज्यादा गंभीरता होगी, क्योंकि उसके पास अपने अनुभव की गुरुता है और उसके पैर ठोस धरती पर टिके है। यह लक्ष्मीबाई के साहस की उसकी वीरता की, उसके युद्ध में जूझने और वीरगति पाने की कहानी है, परन्तु कहीं भी उसके इन गुणों का अलग से वर्णन नहीं है, इनके लिए बड़े-बड़े विशेषण का प्रयोग नहीं है। जो कुछ घटित हुआ था। उसे यथाक्रम सीधे-सीधे और कम-से-कम शब्दों में कहा गया है। यह अलंकारहीन विधा ही शायद इस कविता का सबसे बड़ा गुण है, सबसे हृदयग्राही गुण जो सीधे दिल से बात करता है, उस पर चोट करता है। ...

झांसी की रानी

सुभद्रा कुमारी चौहान

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

कानपुर के नाना की, मुंहबोली बहन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,

वीर शिवाजी की गाथायें उसको याद ज़बानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवाड़,
महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झांसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झांसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियां छाईं झांसी में,
सुभट बुंदेलों की विरुदावलि-सी वह आयी थी झांसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव को मिली भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियारी छाई,
किंतु कालगति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियां कब भाई,
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी नहीं दया आई,
निसंतान मरे राजाजी रानी शोक-समानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

बुझा दीप झांसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फ़ौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,

लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झांसी आया,
अश्रुपूर्ण रानी ने देखा झांसी हुई बिरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया,
राजाओं नवाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महारानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

छिनी राजधानी दिल्ली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदयपुर, तंजौर, सतारा, कर्नाटक की कौन बिसात?
जब कि सिंध, पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात,
बंगाल, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

रानी रोयीं रनिवासों में, बेगम ग़म से थीं बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अखबार,
'नागपुर के ज़ेवर ले लो लखनऊ के लो नौलखा हार',
यों परदे की इज़्ज़त परदेशी के हाथ बिकानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

कुटियों में भी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,

नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण-चण्डी का कर दिया प्रकट आहवान,
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

महलों ने दी आग, झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी,
झांसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपुर,पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपुर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुंधूपंत, तांतिया, चतुर अज़ीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुंवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुरबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

इनकी गाथा छोड़, चले हम झांसी के मैदानों में,
जहां खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वाकर आ पहुंचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वंद्व असमानों में,
ज़ख्मी होकर वाकर भागा, उसे अजब हैरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरंतर पार,

घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना तट पर अंग्रेज़ों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेज़ों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी राजधानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

विजय मिली, पर अंग्रेज़ों की फिर सेना घिर आई थी,
अब के जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुहं की खाई थी,
काना और मंदरा सखियां रानी के संग आई थी,
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,
पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया, हाय! घिरी अब रानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार-पर-वार,
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

रानी गई सिधार चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आयी बन स्वतंत्रता-नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनासी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फांसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झांसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।



जलियाँवाला बाग में बसंत

यहाँ कोकिला नहीं, काग हैं, शोर मचाते,
काले काले कीट, भ्रमर का भ्रम उपजाते।
कलियाँ भी अधखिली,मिली हैं कंटक-कुल से,
वे पौधे, व पुष्प शुष्क हैं अथवा झुलसे।

परिमल-हीन पराग दाग सा बना पड़ा है,
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है।
ओ, प्रिय ऋतुराज! किन्तु धीरे से आना,
यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना।

वायु चले, पर मंद चाल से उसे चलाना,
दुःख की आहें संग उड़ा कर मत ले जाना।

कोकिल गावें, किन्तु राग रोने का गावें,
भ्रमर करें गुंजार कष्ट की कथा सुनावें।

लाना संग में पुष्प, न हों वे अधिक सजीले,
तो सुगंध भी मंद, ओस से कुछ कुछ गीले।
किन्तु न तुम उपहार भाव आ कर दिखलाना,
स्मृति में पूजा हेतु यहाँ थोड़े बिखराना।

कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा कर,
कलियाँ उनके लिये गिराना थोड़ी ला कर।

आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं,
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुए हैं।

कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना,
कर के उनकी याद अश्रु के ओस बहाना।

तड़प तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खा कर,
शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जा कर।

यह सब करना, किन्तु यहाँ मत शोर मचाना,
यह है शोक-स्थान बहुत धीरे से आना।

महात्मा जोतीराव फुले ने भारत के राष्ट्र बनने में जाति-वर्ण को सबसे बड़ी बाधा माना था। जब तक भारत में जाति आधारित भेदभाव है तब तक सच्ची राष्ट्रीय भावना नहीं पनप सकती। सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक में उन्होंने सार्वजनिक सभा और कांग्रेस पर कहा कि

> आर्यों के पाखंडी, स्वार्थी धर्म की वजह से धूर्त आर्य ब्राह्मण अज्ञानी शूद्रों को नीच मानते हैं। अज्ञानी शूद्र अज्ञानी महार को नीच मानते हैं। और अज्ञानी महार लोग मातंग को नीच मानते हैं। लेकिन अतिशुद्ध धूर्त आर्य ब्राह्मण शूद्रादि-अतिशूद्रों को नीच मान कर ही नहीं रुकते, बल्कि उन्होंने इन सभी लोगों में आपस में रोटी व्यवहार और बेटी व्यवहार नहीं होना चाहिए, इसलिए प्रतिबंध भी लगाए हैं। मतलब उन सभी के भिन्न-भिन्न प्रकार के आचार-विचार, खाना-पीना, रस्म-रिवाज आपस में एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। फिर ऐसे अट्ठारह प्रकार के लोगों में एकता होकर उनकी चटपटी नमकीन, मतलब, एकजान जीव (एकात्म समाज) 'Nation' कैसे बन सकेगा ?
> ... इस बलिस्थान के सभी शूद्रादि-अतिशूद्र लोग, भील, केवट आदि सभी लोग जब तक शिक्षित होकर सोच-विचार करने योग्य नहीं बनते तब तक वे सभी संगठित हुए बगैर एकात्म राष्ट्र (Nation) बना नहीं सकते।

आधुनिक काव्य और राष्ट्रीय एकता

राजेन्द्र गौतम



हिन्दी में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग एवं छायावाद युग में राष्ट्रीय एकता के संस्थापक काव्य की अनुगूँजें निरन्तर सुनाई देती रही हैं। यो एक असमंजस भरी स्थिति में भारतेन्दु युग में राज-भक्ति एवं ब्रिटिश शासन की प्रशंसा के गीत भी गाए गए पर वह प्रवृत्ति एक तो राष्ट्रीय भावना को दबा नहीं सकी और क्रमश: देश-भक्ति की प्रेरक शक्ति के रूप में राष्ट्रीय एकता का चित्रण काव्य में होने लगा, दूसरे यह भारतेन्दु की युग स्थायी प्रवृत्ति नहीं थी। स्वयं भारतेन्दु ने जब उत्पादन के अर्थशास्त्र को समझा तो उनका स्वर उपनिवेशवादी विभाजक शक्तियों के प्रति उग्र रूप लेता चला गया।

किसी भी विचारधारा या सिद्धान्त की स्थापना उसके विसंवादी, विरोधी या ऋणात्मक पक्षों की चर्चा के बिना सम्भव नहीं होती। भारतेन्दु काल में ही राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती बनने वाले पूर्वपक्ष को सामने रखा गया और उसका तर्कपूर्ण खण्डन किया गया। राष्ट्रीय एकता विरोधी तत्त्व मध्यकालीन मानसिकता में ही निहित हैं। इस मानसिकता का विरोध करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं :

रचि बहुविधि के वाक्य पुरानन माहि घुसाए
शैव-साक्त-वैष्णव अनेक मत प्रकटि चलाए
जाति अनेकन करि ऊँच अरु नीच बनायो
खान-पान सबनि सो बरजि छुड़ायो

मध्यकाल में 'जाति पाति पूछे नहि कोई/ हरि को भजे सो हरि को होई' के आदर्श से आध्यात्मिक एवं धार्मिक सम्प्राप्तियों के लिए समानता के आधार पर इसकी सर्वजन के लिए उपलब्धता को स्वीकार किया गया है परन्तु भारतेन्दु का कथन इस उक्ति से अधिक व्यापक एवं अग्रगामी है। इसमें सामाजिक आचारों की विशेष चर्चा है और इन दुरभिसन्धियों का पर्दाफाश भी किया गया है, जो मध्यकाल में हमारे पतन का कारण बनी हैं। इन विभेदात्मक विडम्बनाओं का चित्रण प्रतापनारायण मिश्र ने भी तब यो किया था:

भाय-भाय आपस में लरैं
परदेसिन के पायन परैं
यह द्वेष भारत-शशि-राहु
घर का भेदिया लंका दाहु

उपाध्याय पं. बदरीनारायण चौधरी ने इस विभेदकर्त्री स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा है:

भयो भूमि भारत में महाभयंकर भारत।
भये वीरवर सकल सुभट एकहि सँग गारत।।
मरे विबुध नरनाह सकल चातुर गुन मण्डित।
बिगरो जन समुदाय बिना पथदर्शक पण्डित।
नए-नए मत चले नए झगरे नित बाढ़े।
नए-नए दुख परे सीस भारत पर गाढ़े।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने इस विभेद के समाहार के लिए साम्प्रदायिक विद्वेष के परिहार पर बल दिया और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की आवश्यकता का प्रतिपादन किया।

संस्कृति, भूगोल एवं जातीयता राष्ट्रीय एकता के मुख्य आधार हैं। भारत के सन्दर्भ में इनके वैविध्य को नजरअन्दाज कर के किसी भी प्रकार की एकता की चर्चा कोरा प्रचार होगी और अव्यावहारिक होगी जबकि विभेदों के समाहार के साथ उन तत्त्वों का चित्रण, जो भारत को एक समन्वित राष्ट्र की सत्ता प्रदान करते हैं, सार्थक एवं व्यावहारिक होगा। हिन्दी के आधुनिक कवियों ने इस तथ्य को हृदयंगम करते हुए भारत की समृद्ध विविधता को अनेदखा नहीं किया अपितु उसके भौगोलिक स्वरूप को इस प्रकार चित्रित किया है, जिससे राष्ट्रीय एकता के सूत्र मजबूत हो सकें।

द्विवेदी युग में गोपालशरण सिंह ने 'मातृभूमि', कामताप्रसाद गुरु ने 'जन्मभूमि', लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'हमारा देश' रामनरेश त्रिपाठी ने जन्मभूमि-भारतभूमि, मन्नन द्विवेदी ने 'मातृभूमि', शिवनारायण द्विवेदी ने मातृगान तथा सियारामशरण गुप्त ने 'जननी' कविता में भारत की जो प्रशस्ति गाई है, उसमें प्राकृतिक विविधता के बीच विकसित होने वाली राष्ट्रीय एकता का चित्रण है। इस युग के कवि ने परिवर्तन को रेखांकित हुए लिखा है:

भारतीयता का भाव देखो है यहाँ जगने लगा
प्रान्तीयता का पाप इसको छोड़कर भगने लगा

शताब्दी के आरम्भ में ही हिन्दी का कवि इस अलगाव के विषैले खतरों को पहचान चुका था, यह ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट होता है। प्रान्तीयता के पाप के शमन की कामना के साथ-साथ इस युग के कवियों ने धर्मान्धिता से उत्पन्न द्वेष को समाप्त करने का आदर्श भी प्रस्तुत किया था। रूपनारायण पाण्डेय की एक कविता की निम्न पंक्तियाँ इसी आदर्श को प्रस्तुत करती हैं:

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख भाई
कोटि कण्ठ से मिल कर कह दो हम हैं भाई-भाई।

नीलाम्बरा भारत भू के चित्रणकर्ता मैथिलीशरण गुप्त ने जहाँ भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों को प्रस्तुत कर राष्ट्रीय एकता की स्थापना का स्तुत्य प्रयास किया है, वहाँ छायावादी काव्य सांस्कृतिक जागरण का काव्य है। माखनलाल चतुर्वेदी ने तो इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलन को बल देने वाली कविताएँ दी ही हैं, निराला और प्रसाद के अनेक गीत राष्ट्रीय एकता के सफल प्रतिनिधि हैं। प्रसाद ने जहाँ अपने नाटकों में भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण पक्षों का चित्रण किया है, वहाँ 'भारतवर्ष' तथा 'अरुण यह मधुयम देश हमारा' जैसे गीतों में सांस्कृतिक एकता का निरूपण इसकी विविधता के सन्दर्भ में किया गया है। 'लघु सुर धनु से पंख पसारे उड़ने वाले खग रंग-बिरंगी विविधता के प्रतीक है। आधुनिक हिन्दी काव्य में भारत के भौगोलिक विस्तार को चित्रित कर भी उसे एक राष्ट्र माना गया है। इस संकल्पना के पीछे कही न कहीं 'विष्णु पुराण' का यह आदर्श भी रहा है:

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् |
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ||
इसी वैराट्य की प्रतिध्वनि 'निराला' के इस गीत में मिलती है
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे!

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की इन पंक्तियों में जो भव्य काया-बिम्ब उभरता है, वह एक समन्वित राष्ट्र का ही प्रतिबिम्ब है। मैथिलीशरण गुप्त ने 1909 में सरस्वती में जो मातृभूमि शीर्षक कविता प्रकाशित करवाई थी, उसमें भी प्रकृति की छटा राष्ट्रीय एकता का आधार बनती है। निम्न पक्तियाँ इसका प्रमाण देती हैं:

नीलाम्बर परिधान हरित तट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।।
नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं।
बन्दीजन खग-वृन्द, शेषफन सिंहासन है।।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की।।

गुप्त जी ने 'मातृ-मंदिर' कविता में तो इस एकता की भावना का बहुत स्पष्ट निदर्शन किया है। धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि जितने भी पृथकता के आधार हो सकते थे, उनके धनात्मक रूप को प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं:

भारतमाता का मन्दिर यह, समता का संवाद जहाँ

सबका शिव-कल्याण यहाँ है, पावें सभी प्रसाद यहाँ
जाति, धर्म या सम्प्रदाय का नहीं भेद-व्यवधान यहाँ
सबका स्वागत, सब का आदर सबका सम सम्मान यहाँ
राम रहिम बुद्ध ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहाँ
भिन्न-भिन्न भाव संस्कृतियों के गुण-गौरव का ज्ञान यहाँ

हिन्दी कविता में राष्ट्रीय एकता का चित्रण स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में विशेष रूप से हुआ है। जब-जब विघटन की छायाएँ राष्ट्र पर पड़ी हैं, तब-तब उसके प्रतिकार के लिए कवि अधिक तत्परता से सन्नद्ध हुए हैं। अखण्ड भारत को खण्डित करने में प्रयासरत शक्तियों का पर्दाफाश करते हुए सोहन लाल द्विवेदी ने लिखा है:

मन्दिर से मस्जिद लड़ते हैं
गिरजा से सिंहासन मठ
अर्थ अनर्थ कर रहा कितना
करते अधर्म पामर सठ

इस काल में आकर 'निराला' और पन्त की राष्ट्रप्रेम विषयक कविताओं का स्वर भी पहले से भिन्न हो जाता है। सन् 1950 में जब राजनैतिक आजादी का आरम्भिक दौर था, निराला देश की विडम्बना का चित्रण इस प्रकार कर रहे थे:

आशा-आशा मरे
लोग देश के हरे!
देश पड़ा है जहाँ,
सभी झूठ है वहाँ,
भूख-प्यास सत्य,
होंठ सूख रहे हैं अरे!

पन्त जब 1940 में 'भारत माता ग्रामवासिनी' कविता लिखते हैं तो भूख, दैन्य और शोषण के प्रश्न को भी राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्रीय एकता से जोड़ते हैं। इस काल में परिवेश की दावनल-सी भयानक होकर फैल रही शक्तियों की चिन्ता कवि को सताती जरूर है, परन्तु कवि का विश्वास डिगा नहीं है, उसे पूरा-पूरा विश्वास है कि :

मिथ्यान्ध मोह मत्सर को जीतेगा विवेक
यह खण्डित भारतवर्ष बनेगा पुनः एक

राष्ट्रीय एकता को खंडित करने वाला एक तत्त्व आर्थिक वैषम्य भी है। समता का दर्शन ही एकता का प्रमुख आधार हुआ करता है। जहाँ यह समता विलुप्त हो जाती है तो एकता भी खंडित होने लगती है। डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन की ये पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं:

जाति-धर्म के भेद यहाँ
बँधे भूख की डोर
हिन्दू-मुस्लिम खींच रहे
अपनी-अपनी ओर

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय एकता का व्यापक चित्रण हुआ है, किन्तु इस सन्दर्भ में एक तथ्य ध्यातव्य है कि प्रत्येक महान् एवं सफल कवि ने जब राष्ट्रीय एकता का सन्दर्भ प्रस्तुत किया है तो यह विश्व-बन्धुत्व का विरोधी बन कर नहीं आया है। हिन्दी में यदि कुछ कवियों ने संकीर्णता-वृत्ति की या साम्प्रदायिकता के समर्थन की कविता लिखी भी है तो कृत्रिम ओज और आग के इन तथाकथित कवियों को कोई मान्यता नहीं मिली है। राष्ट्रीय एकता के प्रतिष्ठापक कवियों को ही कविता की मुख्य धारा में स्थान मिल पाया है।

आज़ादी की वेला

यह कहना तो समीचीन नहीं कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद साहित्य में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति अप्रासंगिक हो जाती है लेकिन यह भी सच है कि अब उसकी अभिव्यक्ति उसी रूप में प्रासंगिक नहीं थी जिस रूप में स्वतन्त्रता से पूर्व थी। सामान्यत: जहाँ साहित्य पर परिवेश का क्रमश: प्रभाव पड़ता है, वहीं बड़ी एवं आकस्मिक घटनाएँ साहित्य-धाराओं में भी नया मोड़ लाती हैं। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद साहित्य से ऐसी रचनात्मक भूमिका की अपेक्षा थी, जो जनाकांक्षाओं को एक सार्थक दिशा दे सके। इन दशकों में हिन्दी साहित्य के स्वर विविधतामय हैं लेकिन इसमें सन्देह नहीं है कि पहरेदारी और रचनात्मक भूमिका—दोनों प्रकार के स्वर इस दौर के साहित्य में सुनाई देते हैं। कभी ये स्वर तीव्र हुए हैं और कभी मन्द लेकिन अस्तित्वहीन वे कभी नहीं हुए हैं।

भारतीय गणतन्त्र की स्थापना के बाद लिखे गए साहित्य में एक पीढ़ी वह थी जो स्वतन्त्रता संग्राम के दौर से रचनारत ही नहीं थी, मानक शिखरों का निर्माण भी कर चुकी थी। इनमें कुछ बड़े नाम थे—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, केदारनाथ मिश्र प्रभात, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल सोहनलाल द्विवेदी और गोपाल सिंह नेपाली आदि।

निराला की 'भारती जय विजय करे' की प्रतिध्वनियां उनके स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के साहित्य में भी सुनाई देती हैं लेकिन गणतन्त्र के सपनों के साथ उभरने वाले उनके स्वर विशिष्ट हैं। इन नए स्वरों को हम 'सान्ध्य काकली', 'अर्चना और 'आराधना' के गीतों में सुन सकते हैं।

बहुत पहले वे लिख चुके थे— 'दलित जन पर करो करुणा'। गणतन्त्र के उदय के साथ ही उनकी चिन्ताएँ और बढ़ जाती हैं और वे प्रार्थना करते हैं: 'माँ, अपने आलोक निखारो,/नर को नरक त्रास से वारो।' ये निराला ही थे जिन्होंने गीत की आत्मकेन्द्रित धारा को बदलते हुए उसके प्रवाह को जन की ओर मोड़ दिया था। अपने गीतों में उन्होंने जन जीवन को उतारा था।

दिनकर आजादी से पहले युद्ध की विभीषिका के प्रश्न पर 'कुरुक्षेत्र' में गम्भीरता से विचार कर चुके थे लेकिन जब सन् 1962 में चीन द्वारा राष्ट्र की अस्मिता पर हमला हुआ तो वे 'परशुराम की प्रतीक्षा' लिखते हैं। समय की पुकार बनती हुई उनकी यह नयी हुंकार गणतान्त्रिक भारत की राष्ट्रीयता का एक नया अध्याय लिखती है।

चौथे दशक के आरम्भ में ही आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने संस्कृत में 'बन्दी मन्दिरम्' काव्य लिखकर राष्ट्रीयता का उद्बोधन भरा स्वर फूँका था लेकिन लोकतन्त्र के समक्ष उदित होने वाली चुनौतियों के साथ उनकी चिताएँ भी बदल जाती हैं। अमूर्त राष्ट्र के मूर्त जनजीवन की व्यथा-कथा कहने लगते हैं और वे एक नया 'बादल राग' लिखते हुए कहते हैं: 'ऊपर ही ऊपर पी जाते हैं जो पीने वाले हैं।' शोषण के पूरे तन्त्र को उघाड़ते हुए जब वे लिखते हैं— 'गेहूँ काटने गई है अम्मा/ बाप गया बेगारी में' तो राष्ट्रीयता के जन सापेक्ष रूप को सामने रखते हैं।

पूर्वोक्त महान कवियों की रचनाओं के जिस बदले हुए स्वर का उल्लेख किया गया है, उससे स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता संग्राम के समय राष्ट्रीयता का जो स्वरूप था, नए लोकतन्त्र में वह बहुत बदला है। मुख्यत: उसके दो रूप हैं। एक राष्ट्रप्रेम की वे पारम्परिक कविताएँ जिनमें देशभक्ति के प्रत्यक्ष स्वर सुनाई देते हैं। इनमें कुछ वे उत्साही कविताएँ हैं जो भारत-चीन या भारत-पाकिस्तान के युद्धों के दौरान लिखी गई थीं। राष्ट्र-एकता के सामूहिक आह्वान के रूप में ऐसी कविताओं का समसामयिक महत्व तो है पर इस तरह की कविताओं में स्थायी महत्व की रचनाएँ बहुत कम हैं। राष्ट्रप्रेम की पारम्परिक कविताओं में एक सुन्दर एवं प्रशंसनीय स्वर भी है। इसमें देश की भौगोलिक, आंचलिक तथा सांस्कृतिक सुन्दरता का चित्रण है। बच्चन भी जब कविता में आत्मकथा से बाहर निकलते हैं तो 'त्रिभंगिमा' और 'चार खेमे चौंसठ खूँटे' में लोकगीतों के माध्यम से देश की माटी का ही चित्रण करते हैं। इस वर्ग की कविताओं में सबसे सुन्दर अभिव्यक्ति 'धरती गीताम्बरा' के रचनाकार वीरेन्द्र मिश्र द्वारा हुई है। स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय धारा के कवियों में वीरेन्द्र मिश्र का स्थान अति विशिष्ट है। इस तरह की रचनाओं के स्वर की पहचान मिश्र जी की इन पंक्तियों से होती है : 'लो अब गाता हूँ कोई अन्धकार की चादर मेरी और बढ़ाये ना जलता दीप है ये/ इससे प्यार मुझको'। शम्भुनाथ सिंह के अन्तिम कविता संकलन का शीर्षक ही है : 'माताभूमि: पुत्रोऽहम् पृथिव्य:'। इस संकलन में आधुनिक संवेदनाओं के साथ भारत के प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को भी अभिव्यक्त मिली है। राष्ट्रीयता का एक उदात्त स्वर इसमें सुनाई देता है। यों इससे पूर्व ही उन्होंने 'वक्त की मीनार' में

लिखा था : 'देश हैं हम महज राजधानी नहीं।' गत छह दशक के हिन्दी साहित्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा वह है, जिसमें प्रत्यक्ष: राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति दिखाई नहीं देती लेकिन एक गहरे अर्थ में वह राष्ट्रीयता का ही साहित्य है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध— सभी विधाओं के साहित्य में यह प्रवृत्ति विद्यमान है। इस साहित्य में राष्ट्र के प्रति चिन्ता है और राष्ट्र के प्रति चिन्ता का अर्थ है, राष्ट्र के नागरिक के सुख-दुख की चिन्ता- लोकतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता को सुलभ बनाने की चिन्ता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के साहित्य में मुख्यत: आत्म-आलोचना की राष्ट्रीयता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति की गाथा एक अलग संघर्ष की गाथा है। उस समय तो राष्ट्रीयता का परिचायक यही स्वर था: 'मिलती नहीं आजादी ली जाती है मीत/ तलवारों के साये में गाने पड़ते हैं गीत।' लेकिन गत साठ वर्षों का साहित्य एक दूसरे रूप में राष्ट्रीय साहित्य है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री, गजानन माधव मुक्तिबोध, धुमिल, दुष्यन्त या बाद में आने वाले कवि मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्रपति विजेन्द्र आदि रचनाकारों की एक बड़ी पंक्ति वह है, जो लोक के साथ खड़ी है, उसकी जन-प्रतिबद्धता ही उसकी राष्ट्रीयता है। गजानन माधव मुक्तिबोध की कविताएँ सत्ता तथा राजनीति के कुचक्र में पिसती असहाय मानवता का दस्तावेज हैं। 'अँधेरे में' वे रचनाकार से भी उसके दायित्व का सवाल खड़ा करते हैं: 'अब तक क्या किया/ जीवन क्या जिया!! ज्यादा लिया, दिया बहुत-बहुत कम, मर गया, देश, अरे जीवित रह गए तुम!!' नागार्जुन कबीर जैसे तेवर में समाज की विडम्बनाओं पर व्यंग्य करते हैं। 1953 में लिखी उनकी कविता 'नया तरीका' में चोरबाजारी को इस तरह दिखाया है— 'नया तरीका अपनाया है राधे ने इस साल/ बैलों वाले पोस्टर साटे चमक उठी दीवाल /नीचे से लेकर ऊपर तक समझ गया सब हाल/ सरकारी गल्ला चुपके से भेज रहा नेपाल/ अन्दर टंगे पड़े हैं गांधी-तिलक-जवाहरलाल।' गाँवों में शिक्षा और शिक्षकों की जिस दयनीय स्थिति का सजीव चित्रण उनकी 'मास्टर (1953) शीर्षक कविता में है, वह आज भी वैसी ही है। 'घुन-खाए शहतीरों पर की बाराखड़ी विधाता बाँचे/ कटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे/ बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट पर पाँच तमाचे,/ दुखरन मास्टर गढ़ते रहते किसी तरह आदम के साँचे'। श्रीकान्त वर्मा ने 'मगध' संग्रह में राष्ट्र की चिन्ताओं पर नये परिप्रेक्ष्य में ही विचार किया है। उधर रघुवीर सहाय की कविता पैनी पत्रकारीय दृष्टि से लिखी गई हैं। इनमें शासकों और अपराधियों के गठजोड़ को उजागर किया गया है तथा इसमें आम जनता की असहायता दिखाई गई है। उनकी 'अधिनायक' शीर्षक कविता में गणतन्त्र का नायक भूखी-नंगी जनता पर अधिनायक की तरह राज कर रहा है। 'राष्ट्रगीत में भला कौन वह/ भारत-भाग्य विधाता है / फटा सुथन्ना पहने जिसका/ गुन हरचरना गाता है'। भारतीय गणतन्त्र

के उद्भव के साथ देश के विभाजन का सदमा जुड़ा है। साम्प्रदायिकता का दंश और विभाजन की पीड़ा अनेक साहित्यिक कृतियों में प्रकट हुई हैं।

सार रूप में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य जन का ही अधिवक्ता है, जन-जीवन का ही प्रस्तोता है। उसके सामने राष्ट्रीयता की जो भी तस्वीर बनी है, उसमें वह जन की ही उपस्थिति देखता है।

लेखक -दिल्ली विश्वविद्यालय में सेवानिवृत प्रोफेसर

20 सितंबर, 1953 को जवाहर लाल नेहरू ने मुख्यमंत्रियों को लिखा:

राष्ट्रवाद की भावना उस तज़ुर्बे का नाम है, जिसमें कोई इंसान या मुल्क ख़ुद को बड़ा और व्यापक बनाता है। जब कोई देश किसी विदेशी ताक़त के अधीन होता है, राष्ट्रवाद उसे मज़बूत और एकजुट बनाने वाली ख़ास ताक़त होता है। लेकिन एक ऐसा स्तर आता है, जब यह संकीर्ण असर पैदा करने लगता है। कई बार ऐसा होता है कि यह संकीर्ण हो जाता है और ख़ुद को दूसरे देशों और दूसरे लोगों पर थोपने की कोशिश करने लगता है। यूरोप में इस तरह की मिसालें हैं। बहुत से लोगों को यह मुगालता होता है कि वे ख़ास हैं और दूसरों से बेहतर हैं। जब ऐसे लोग मज़बूत और ताकतवर हो जाते हैं, तो वे ख़ुद को और अपने तौर-तरीक़ों को दूसरों पर थोपने लगते हैं। ऐसा करने में वह अपनी शक्तियों का अतिक्रमण कर जाते हैं और रुक जाते हैं और गिर जाते है। जर्मनी और जापान के ज़बर्दस्त राष्ट्रवाद का यही हाल हुआ।

लेकिन राष्ट्रवाद का एक और भी ज़्यादा घातक रूप है। दिमाग का संकीर्ण हो जाना। यह किसी देश के भीतर ही पनपता है। जब बहुसंख्यक यह सोचने लगते हैं कि वही पूरा देश हैं और अल्पसंख्यकों को ख़ुद में समाहित करने की कोशिश में, उन्हें ख़ुद से दूर करने लगते हैं या इससे भी बुरा होता है। हमें भारत में इस बात से ख़ासतौर पर सावधान रहना है। क्योंकि हमारे देश में जाति और अलगाव की परंपरा रही है। हम लोगों की अलग-अलग समूहों में पड़ जाने की आदत है और इस चक्कर में हम बृहत्तर एकता को भूल जाते हैं।

पीयूष बबेले, नेहरू: मिथक और सत्य



बालकृष्ण शर्मा नवीन

विप्लव-गायन

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,जिससे उथल-पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए,एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ,त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का - धुँआधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाएँ,भस्मसात भूधर हो जाएँ,
पाप-पुण्य सद्सद भावों की,धूल उड़ उठे दायें-बायें,
नभ का वक्षस्थल फट जाए- तारे टूक-टूक हो जाएँ
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।

माता की छाती का अमृत - मय पय काल-कूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे, वे शोणित की घूँटें हो जाएँ,
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति विगलित हो जाए,
अंधे मूढ़ विचारों की वह, अचल शिला विचलित हो जाए,
और दूसरी ओर कंपा देने वाला गर्जन उठ धाए,
अंतरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मंडराए,
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए,

नियम और उपनियमों के ये बंधक टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ
शांति-दंड टूटे उस महा- रुद्र का सिंहासन थर्राए
उसकी श्वासोच्छ्वास-दाहिका, विश्व के प्रांगण में घहराए,
नाश! नाश!! हा महानाश!!! की, प्रलयंकारी आँख खुल जाए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए।

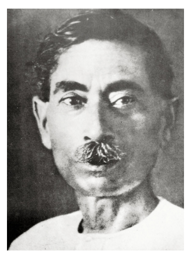
सावधान! मेरी वीणा में, चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें, अंगुलियाँ दोनों मेरी ऐंठी हैं।

कंठ रुका है महानाश का मारक गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, हृत्तल में अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं - इस ज्वलंत गायन के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है निकली मेरे अंतरतर से!

कण-कण में है व्याप्त वही स्वर रोम-रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है, कालकूट फणि की चिंतामणि,
जीवन-ज्योति लुप्त है - अहा! सुप्त है संरक्षण की घड़ियाँ,
लटक रही हैं प्रतिपल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँ।
चकनाचूर करो जग को, गूँजे ब्रह्मांड नाश के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है निकली मेरे अंतरतर से!

दिल को मसल-मसल मैं मेंहदी रचता आया हूँ यह देखो,
एक-एक अंगुल परिचालन में नाशक तांडव को देखो!
विश्वमूर्ति! हट जाओ!! मेरा भीम प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाशमात्र अवशेष रहेगा,
आज देख आया हूँ - जीवन के सब राज़ समझ आया हूँ,
भ्रू-विलास में महानाश के पोषक सूत्र परख आया हूँ,
जीवन गीत भूला दो - कंठ, मिला दो मृत्यु गीत के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है, निकली मेरे अंतरतर से!

"हम जिस राष्ट्रयीता का स्वप्न देख रहे हैं उसमें तो जन्मगत वर्णों की गंध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे, या सभी हरिजन होंगे।"



- प्रेमचंद

राजनीतिक कैदियों को जेलों में क्या-क्या यातनायें दी जाती थी

राम सिंह जाखड़

(रामसिंह जाखड़ स्वतंत्रता सेनानी थे, इनका जन्म 22 फरवरी 1916 में गांव लडायन, तत्कालीन जिला रोहतक में हुआ। एक कविता पढ़ने के कारण सजा हुई। 'आप बीती और अनुभव' नामक पुस्तक में जेल के अनुभव लिखे।)

स्वतन्त्रता संग्राम के समय राजनीतिक कैदियों को निम्न यातनाएं दी जाती थीं जब कभी जेल वालों से राजनीतिक कैदियों का किसी बात पर झगड़ा हो जाता तो अधिकारी तरह-तरह की यातनाएं हफ्ते या पंद्रह दिन के लिए देते।

1. बेड़ी - लोहे के दो डण्डे जिनमें दो कड़े लगे होते थे। कैदी के दोनों पांवों में डाल दिए जाते थे और दूसरा हिस्सा अपने हाथ पकड़कर चलता था।

2. डण्डा बेड़ी - यदि इससे भी अधिक सजा देनी होती तो डण्डा बेड़ी जिसमें लोहे का डण्डा ढाई फुट का दोनों पांवों के बीच में डाल दिया जाता जिससे कैदी चौड़े पांव करके बड़ी मुश्किल से चलता था।

3. खड़ी थहकड़ी - अर्थात् दरख्त पर इतने ऊंचे एक कड़ा लगा रहता था। जिससे कैदी को हथकड़ी लगाकर कड़े में लटका देते थे जिससे केवल पंजे टिके रहते थे। यह सजा रोजाना दो से चार घण्टे सहनी पड़ती थी।

4. चक्की पीसना - जेल खाने में सजा के तौर पर 15 से 25 सेर तक अनाज रोजाना खड़े होकर पीसना पड़ता क्योंकि चक्की ऊंची होती थी।

5. कोल्हू चलाना - कोल्हू चलाने के लिए चार आदमियों को 24 सेर सरसों पेलनी पड़ती थी। दो कैदी एक समय में बैल की तरह जोतकर चलाए जाते थे।

6. बन्द कोठड़ी - कुछ कैदियों को कई महीने तक अलग-2 कोठडी में बन्द रखा जाता। और रही बात पेशाब और खाना पीना भी उसी कोठडी में होता था। यह सब सजायें कोई कैदी भुगत चुका हो तो 5 से 90 बेतों तक की सजा दी जाती थी लेकिन एक समय में 30 बेंत से ज्यादा नहीं लगाई जा सकती थी। 90 बेंतों के बाद उस व्यक्ति के खिलाफ जेल अधिकारियों को कोर्ट में केस ले जाना पड़ता।

इसके अतिरिक्त सख्त कैद वालों को मूज कूटना, बाण बांटना तथा खेती आदि काम करने पड़ते थे। कैदियों को शाम के 5 बजे से सुबह 7 बजे तक कोठड़ी या बारकों में बन्द रखा

जाता। बारक और कोठड़ियों में टट्टी, पेशाब के लिए मिट्टी के कूण्डे रखे हुये थे। जिनको भंगी 24 के घण्टे बाद बाहर ले जाता था।

जेल में खाने के लिए कैदियों को सुबह आधा पाव भूगड़े और आधा छटांक गुड़ दिया जाता और दोपहर को तेल में बनी ऐसी सब्जी जिसमें कीड़े और घास भी होती और कुट्टी की तरह काट कर बनाई जाती और दो रोटियां जो पत्तल के बराबर और अधसिकी होती थी जिससे कैदी के पेट में दर्द हो जाता था और शाम को दो वैसी ही रोटियां और इतनी पतली दाल जिसमें दाल के दाने ढूढ़ने से ही मिलते थे। खाना खाने के लिए दो लोहे की बाटियां होती थी जो एक दाल और एक पानी के लिए होती थी। खाना खाते समय मैदान में कैदियो को एक लाइन में बिठाया जाता था।

अगर कोई कैदी बीमार होता तो उसे चाहे कोई भी बीमारी हो जेल के हस्पताल में केवल दो दवाइयां होती थी - पिलाने के लिए कुनीन मिक्सचर और लगाने के लिए टिन्चर आयोडीन। इसी कारण हमारे पंजाबी साथियों ने निम्न प्रकार के गाने बनाए हुए थे जिनकी कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार हैं -

तुसी वाकिफ ना जेलों दी कार दे रे।
पूछों उनां नू जेड़े दिन गुजार दे रे।
बीमार होवे तो दवैं कुनीन पिला।
जख्म उत्ते दें टिंचर आयोडोन लगा।
बस ये दो नुस्खे हैं खातीर बिमार दे रे।

इसी प्रकार हरियाणा वालों ने भी एक भजन बनाया।

जेलों में कैदी कै सौ सौ झाल उठैं सैं।
बाहर के नर नारी सारे मौज लूटैं सैं।
कोट मौका ऊँचा चिन दिया डबल दीवार में।
बाडर से तो बाडर मिल रहा एक कतार में।
कैदी अंदर रोका ताला जड़ा किवाड़ में।
छोटी कोठड़ी घोर अंधरा, न्यू तारे से टूटैं सें।

ऊपर लिखी हुई सख्त यातनाएं स्वतंत्रता आन्दोलन के समय आजादी के परवानों ने सहन की और देश की स्वतंत्रता के लिए अपनी जवानियां जेलों की नजर कर दी।



शामलाल पार्षद

कौमी झंडा

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा
झंडा ऊंचा रहे हमारा
सदा शक्ति सरसाने वाला, प्रेम-सुधा बरसाने वाला
वीरों को हर्षाने वाला, मातृभूमि का तन-मन सारा
झंडा ऊंचा रहे हमारा।

स्वतंत्रता के भीषण रण में, लखकर बढ़े जोश छन-छन में
कांपे शत्रु देखकर मन में, मिट जाए भय संकट सारा
झंडा ऊंचा रहे हमारा।

इस झंडे के नीचे निर्भय, ले स्वराज्य हम अविचल निश्चय,
बोलो भारत माता की जय, स्वतंत्रता है ध्येय हमारा
झंडा ऊंचा रहे हमारा।

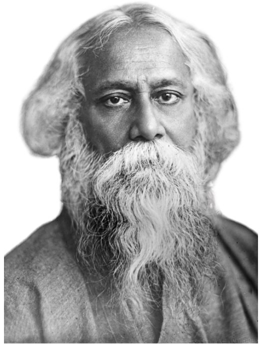
इसकी शान न जाने पाए, चाहे जान भले ही जाए
विश्व विजय करके दिखलाए, तब होवे प्रण पूर्ण हमारा
झंडा ऊंचा रहे हमारा।

जेल में क्या क्या है

'बैरक है, 'बर्थ', 'बेल' बेड़ियाँ हैं, बावले हैं,
ब्यूटीफुल बालटी की दाल बे-मसाला है।
चट्टा है, चटाई, चारु-चीलर हैं चारों ओर तौक,
तसली है, तसला है और ताला है।
जाहिर जहान जमा-मार जमादार भी हैं,
कच्ची- कच्ची रोटी सड़े साग का नेवाला है।
शाला, क़ैदियों की काला कम्बल दुशाला जहां
‘उग्र ने वहीं पे फ़िलहाल डेरा डाला है।



पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'



राष्ट्रवाद के बारे में

रवींद्रनाथ टैगोर

प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस की पत्नी अबला बोस की राष्ट्रवाद पर अपनी आलोचना का जवाब देते हुए सन 1908 में टैगोर ने कहा

"देशभक्ति मेरे लिये मेरा अंतिम आध्यात्मिक आश्रय नहीं हो सकता है। मैं हीरे की कीमत में, शीशा नहीं खरीद सकता हूँ। जब तक मेरा जीवन है मैं मनुष्यता के ऊपर देशभक्ति की जीत हावी नहीं होने दूंगा।"

टैगोर ने 1916-17 में जापान और अमेरिका की यात्रा के दौरान राष्ट्रवाद पर कई वक्तव्य दिए। 1917 में दिए गए एक भाषण में टैगोर ने कहा

"राष्ट्रवाद का राजनीतिक और आर्थिक संगठनात्मक आधार उत्पादन में बढ़ोत्तरी और मानवीय श्रम की बचत कर अधिक संपन्नता हासिल करने का प्रयास है। राष्ट्रवाद की धारणा मूलतः राष्ट्र की समृद्धि और राजनैतिक शक्ति में बढ़ोत्तरी करने में इस्तेमाल की गई है। शक्ति की बढ़ोत्तरी की इस संकल्पना ने देशों में पारस्परिक द्वेष, घृणा और भय का वातावरण बनाकर मानव जीवन को अस्थिर और असुरक्षित बना दिया है। यह सीधे-सीधे जीवन से खिलवाड़ है, क्योंकि राष्ट्रवाद की इस शक्ति का प्रयोग बाहरी संबंधों के साथ ही राष्ट्र की आंतरिक स्थिति को नियंत्रित करने में भी होता है। ऐसी स्थिति में समाज पर नियंत्रण बढ़ना स्वाभाविक है। ऐसे में समाज और व्यक्ति के निजी जीवन पर राष्ट्र छा जाता है और एक भयावह नियंत्रणकारी स्वरूप हासिल कर लेता है। दुर्बल और असंगठित पड़ोसी राज्यों पर अधिकार करने की कोशिश राष्ट्रवाद का ही स्वाभाविक प्रतिफल है। इससे पैदा हुआ साम्राज्यवाद अंततः मानवता का संहारक बनता है।"

भारत के संदर्भ में टैगोर ने लिखा है,

"भारत की समस्या राजनैतिक नहीं सामाजिक है। यहां राष्ट्रवाद नहीं के बराबर है। हकीकत तो ये है कि यहां पर पश्चिमी देशों जैसा राष्ट्रवाद पनप ही नहीं सकता, क्योंकि सामाजिक काम में अपनी रूढ़िवादिता का हवाला देने वाले लोग जब राष्ट्रवाद की बात करें तो वह कैसे प्रसारित होगा? भारत को राष्ट्र की संकरी मान्यता छोड़कर अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी आधार पर राष्ट्रवाद की आलोचना करते हुए लिखा

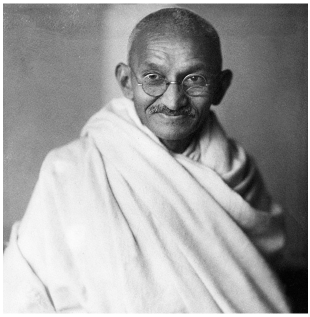
"राष्ट्र के विचार को जनता के स्वार्थ का ऐसा संगठित रूप माना है, जिसमें मानवीयता तथा आत्मत्व लेशमात्र भी नहीं रह पाता है। दुर्बल एवं असंगठित पड़ोसी राज्यों पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास यह राष्ट्रवाद का ही स्वाभाविक प्रतिफल है। इस से उपजा साम्राज्यवाद अंततः मानवता का संहारक बनता है। राष्ट्र की शक्ति में वृद्धि पर कोई नियंत्रण स्वंभव नहीं, इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं। उसकी इस अनियंत्रित शक्ति में ही मानवता के विनाश के बीज उपस्थित हैं। राष्ट्रों का पारस्परिक संघर्ष जब विश्वव्यापी युद्ध का रूप धारण कर लेता है, तब उसकी संहारकता के सामने सब कुछ नष्ट हो जाता है। यह निर्माण का मार्ग नहीं, बल्कि विनाश का मार्ग है।"

संकीर्ण राष्ट्रवाद के विरोध में वे लिखते हैं

"राष्ट्रवाद जनित संकीर्णता यह मानव की प्राकृतिक स्वच्छंदता एवं आध्यात्मिक विकास के मार्ग में बाधा है। ऐसा राष्ट्रवाद युद्धोन्मादवर्धक एवं समाज विरोधी ही होगा। क्योंकि राष्ट्रवाद के नाम पर राज्य द्वारा सत्ता की शक्ति का अनियंत्रित प्रयोग अनेक अपराधों को जन्म देता है।"

व्यक्ति को राष्ट्र के प्रति समर्पित कर देना उन्हें कतई स्वीकार नहीं था। राष्ट्र के नाम पर मानव संहार तथा मानवीय संगठनों का संचालन उन के लिए असहनीय था। उन के विचार में राष्ट्रवाद का सब से बड़ा खतरा है

"मानव की सहिष्णुता तथा उसमें स्थित नैतिकताजन्य परमार्थ की भावना राष्ट्र की स्वार्थपरायण नीति के चलते समाप्त हो जाएंगे। ऐसे अप्राकृतिक एवं अमानवीय विचार को राजनैतिक जीवन का आधार बनाने से सर्वनाश ही होगा।"



राष्ट्रवाद का सच्चा स्वरूप

महात्मा गाँधी

मेरे लिए देशप्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है; दोनों एक ही हैं। मैं देशप्रेमी हूँ, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूँ। मेरा देशप्रेम वर्जनशील नहीं हैं। मैं भारत के हित की सेवा के लिए इंग्लैंड या जर्मनी का नुकसान नहीं करूँगा। जीवन की मेरी योजना में साम्राज्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। देशप्रेम की जीवन-नीति किसी कुल या कबीले के अधिपति की जीवन-नीति से भिन्न नहीं है। और यदि कोई देशप्रेमी उतना ही उग्र मानव-प्रेमी नहीं है, तो कहना चाहिए कि उसके देशप्रेम में उतनी न्यूनता है। वैयक्तिक आचरण और राजनीतिक आचरण में कोई विरोध नहीं है; यदाचार का नियम दोनों को लागू होता है।

जिस तरह देशप्रेम का धर्म हमें आज यह सिखाता है कि व्यक्ति को परिवार के लिए, परिवार को ग्राम के लिए, ग्राम को जनपद के लिए और जनपद को प्रदेश के लिए मरना सीखना चाहिए, उसी तरह किसी देश को स्वतंत्र इसलिए होना चाहिए कि वह आवश्यकता होने पर संसार के कल्याण के लिए अपना बलिदान दे सके। इसलिए राष्ट्रवाद की मेरी कल्पना यह है कि मेरा देश इसलिए स्वाधीन हो कि प्रयोजन उपस्थित होने पर सारी ही देश मानव-जाति की प्राणरक्षा के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करे। उसमें जातिद्वेष के लिए कोई स्थान नहीं है। मेरी कामना है कि हमारा राष्ट्रप्रेम ऐसा ही हो।

मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके। मैं यह नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों के नाश की नींव पर हो।

यूरोप के पाँवों में पड़ा हुआ अवनत भारत मानव-जाति को कोई आशा नहीं दे सकता। किंतु जाग्रत और स्वतंत्र भारत दर्द से कराहती हुई दुनिया को शांति और सद्भाव का संदेश अवश्य देगा।

राष्ट्रवादी हुए बिना कोई अंतर-राष्ट्रीयतावादी नहीं हो सकता। अंतर-राष्ट्रीयतावाद तभी संभव है जब राष्ट्रवाद सिद्ध हो चुके-यानी जब विभिन्न देशों के निवासी अपना संघटन कर लें और हिल-मिलकर एकतापूर्वक काम करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लें। राष्ट्रवाद में कोई बुराई नहीं है। बुराई तो उस संकुचितता, स्वार्थवृत्ति और बहिष्कार-वृत्ति में है, जो मौजूदा राष्ट्रों के मानस में जहर की तरह मिली हुई है। हर एक राष्ट्र दूसरे की हानि करके अपना लाभ करना चाहता है और उसके नाश पर अपना निर्माण करना चाहता है। भारतीय राष्ट्रवाद ने एक नया रास्ता लिया हैं। वह अपना संघटन या अपने लिए आत्म -प्रकाशन का पूरा अवकाश विशाल मानव-जाति के लाभ के लिए उसकी सेवा के लिए ही चाहता है।

भगवान ने मुझे भारत में जन्म दिया और इस तरह मेरा भाग्य इस देश की प्रजा के भाग्य के साथ बाँध दिया है, इसलिए यदि मैं उसकी सेवा न करूँ तो मैं अपने विधाता के सामने अपराधी ठहरूँगा। यदि मैं यह नहीं जानता कि उसकी सेवा कैसे की जाए, तो मैं मानव-जाति की सेवा करना सीख ही नहीं सकता और यदि अपने देश की सेवा करते हुए मैं दूसरे देशों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाता, तो मेरे पथभ्रष्ट होने की कोई संभावना नहीं है।

मेरा देशप्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं बल्कि अतिशय व्यापक वस्तु है और मैं उस देशप्रेम को वर्ज्य मानता हूँ जो दूसरे राष्ट्रों को तकलीफ देकर या उनका शोषण करके अपने देश को उठाना चाहता है। देशप्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह हमेशा, बिना किसी अपवाद के हर एक स्थिति में, मानव-जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो देशप्रेम की कोई कीमत नहीं इतना ही नहीं, मेरे धर्म और उस धर्म से ही प्रसूत मेरे देशप्रेम के दायरे में प्राणियों का समावेश होता है। मैं न केवल मनुष्य नाम से पहचाने जाने वाले प्राणियों के साथ भ्रातृत्व ओर एकात्मता सिद्ध करना चाहता हूँ, बल्कि समस्त प्राणियों के साथ-रेंगने वाले साँप आदि जैसे प्राणियों साथ भी-उसी एकात्मता का अनुभव करना चाहता हूँ। कारण, हम सब उसी एक सृष्टा की संतति होने का दावा करते हैं और इसलिए सब प्राणी, उनका रूप कुछ भी हो, मूल में एक ही हैं।

हमारा राष्ट्रवाद दूसरे देशों के लिए संकट का कारण नहीं हो सकता क्योंकि जिस तरह हम किसी को अपना शोषण नहीं करने देंगे, उसी तरह हम भी किसी का शोषण नहीं करेंगे। स्वराज्य के द्वारा हम सारी मानव-जाति की सेवा करेंगे।

सार्वजनिक जीवन के लगभग 50 वर्ष के अनुभव के बाद आज मैं यह कह सकता हूँ कि अपने देश की दुनिया की सेवा से असंगत नहीं है - इस सिद्धांत में मेरा विश्वास बढ़ा ही है। यह एक उत्तम सिद्धांत है। इस सिद्धांत को स्वीकार करके ही दुनिया की मौजूदा कठिनाइयाँ आसान की जा सकती हैं और विभिन्न राष्ट्रों में जो पारस्परिक द्वेषभाव नजर आता है उसे रोका जा सकता है।



भारतीय समाज, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता

डा. भीम राव आंबेडकर

बाबासाहब डा. भीम राव आंबेडकर एक उदारवादी प्रजातांत्रिक थे जो सामाजिक न्याय के साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों के हामी थे। वे ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जिनका मकसद सिर्फ अंग्रेजों से राजनीतिक शक्ति हासिल करना नहीं बल्कि भारत को पुरातनपंथी-रुढ़िवादी परंपराओं और जातिप्रथा जैसी अमानवीय संस्थाओं से मुक्ति दिलाकर एक आधुनिक राष्ट्र बनाना था। बाबा साहेब के लिए भारतीय राष्ट्र उसके विविध किस्म के लोगों में हैं न कि सिर्फ भौगोलिक नक्शे, झंडे आदि प्रतीकों या किसी मूर्ति में।

25 नवंबर 1949 को संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए आंबेडकर ने कहा -

> ''मेरी राय है कि यह मानकर कि हम एक राष्ट्र हैं, हम एक बड़े भ्रम को संजो रहे हैं। हजारों जातियों में बंटे लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? जितनी जल्दी हमें यह अहसास हो जाएगा कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम अभी भी एक राष्ट्र नहीं हैं, उतना ही हमारे लिए बेहतर होगा क्योंकि तभी हम एक राष्ट्र बनने की आवश्यकता का अहसास कर सकेंगे और अपने इस लक्ष्य को पाने के तरीकों और रास्तों पर गंभीरतापूर्वक विचार कर सकेंगे। जातियां मूलतः राष्ट्र-विरोधी हैं क्योंकि वे सामाजिक जिंदगी को बांटती हैं। वे राष्ट्रविरोधी इसलिए भी हैं क्योंकि उनसे विभिन्न जातियों के बीच ईर्ष्या और विद्वेष उत्पन्न होता है।''

डा. आंबेडकर राष्ट्र के निर्माण में जाति-व्यवस्था और धर्म को बड़ी बाधा मानते थे। इस संबंध में उन्होंने लिखा

> ''मेरी राय में इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक आप अपनी सामाजिक व्यवस्था नहीं बदलेंगे , तब तक कोई प्रगति नहीं होगी । आप समाज को रक्षा या अपराध के लिए प्रेरित

> कर सकते हैं लेकिन आप जाति की नींव पर कुछ खड़ा नहीं कर सकते। आप एक राष्ट्र खड़ा नहीं कर सकते, आप एक नैतिकता खड़ी नहीं कर सकते। जाति की नींव पर आप जो भी खड़ा करेगे, उसमें दरारें आ जाएंगी और वह कभी एक न रह सकेगा'' (डा. बाबासाहेब आंबेडकर, राईटिंग्सि एंड स्पीचिज, खण्ड 1, पृष्ठ 66, महाराष्ट्र शासन प्रकाशन, 1979)।

बाबासाहब लोकतंत्र के पक्षधर थे और धर्म निरपेक्ष राज्य में ही सच्चे लोकतंत्र की स्थापना की जा सकती है। राष्ट्र को धर्म के आधार पर नहीं देखते थे। इसलिए वे हिंदू राष्ट्र की स्थापना के खिलाफ थे। 1940 में ही धर्म आधारित राष्ट्र पाकिस्तान की मांग पर आगाह करते हुए डॉक्टर आंबेडकर ने कहा था

> "अगर हिंदू राष्ट्र बन जाता है तो बेशक इस देश के लिए एक भारी ख़तरा उत्पन्न हो जाएगा. हिंदू कुछ भी कहें, पर हिंदुत्व स्वतंत्रता, बराबरी और भाईचारे के लिए एक ख़तरा है. इस आधार पर लोकतंत्र के अनुपयुक्त है. हिंदू राज को हर क़ीमत पर रोका जाना चाहिए."

राष्ट्रीयता के बारे में डा. आंबेडकर लिखते हैं

> राष्ट्रीयता एक सामाजिक भावना है, जो लोगों में यह भाव जगाती है कि वे एक हैं और परस्पर सजातीय हैं। लेकिन यह राष्ट्रीय अनुभूति दोधारी है। एक तरफ यह अपने लोगों के प्रति अपनत्व दिखाती है, तो दूसरी तरफ यह उन लोगों के प्रति, जो उनके अपने नहीं हैं, नफरत का भाव पैदा करती है। इस प्रकार यह वह जातीय चेतना है, जो लोगों को भावात्मक रूप से इतनी मजबूती से बांधे रखती है कि सामाजिक और आर्थिक विषमता की समस्याएं भी उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं रहतीं; पर, अपने से भिन्न समुदायों के प्रति यह घोर अलगाववादी चेतना है और शत्रुतापूर्ण भी। सार रूप में, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, असल में, यही है।

डा. आंबेडकर राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद में अन्तर करते हैं

> यह सच है कि राष्ट्रीयता के बिना राष्ट्रवाद का निर्माण नहीं हो सकता, परन्तु यह कहना हमेशा सच नहीं होता। लोगों में राष्ट्रीयता की भावना उपस्थित हो सकती है, पर जरूरी नहीं है कि उनमें राष्ट्रवाद भी उपस्थित हो। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीयता हमेशा राष्ट्रवाद को जन्म नहीं देती है। वे कहते हैं कि राष्ट्रीयता को राष्ट्रवाद में बदलने के लिए दो शर्तें जरूरी हैं। पहली, लोगों में एक राष्ट्र के रूप में रहने की इच्छा का जाग्रत होना, क्योंकि, राष्ट्रवाद इसी इच्छा की गतिशील अभिव्यक्ति है। और, दूसरी शर्त, एक ऐसे क्षेत्र का होना, जो एक राष्ट्र का सांस्कृतिक घर बन सके।



रामधारी सिंह दिनकर

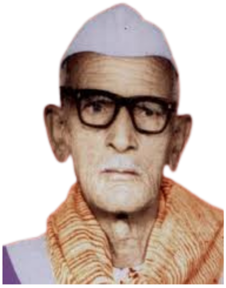
कलम, आज उनकी जय बोल

जला अस्थियाँ बारी-बारी
चिटकाई जिनमें चिंगारी,
जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफानों में एक किनारे,
जल-जलाकर बुझ गए किसी दिन
माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
उगल रही सौ लपट दिशाएं,
जिनके सिंहनाद से सहमी
धरती रही अभी तक डोल
कलम, आज उनकी जय बोल।

अंधा चकाचौंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा,
साखी हैं उनकी महिमा के
सूर्य चन्द्र भूगोल खगोल
कलम, आज उनकी जय बोल



गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही

आज़ाद हिंद फ़ौज का कड़खा

आज़ाद हिंद फ़ौज है तैयार हो गई,
क़ायम स्वतंत्र अपनी है सरकार हो गई;
दुनिया हमारी आज है ग़मख़्वार हो गई,
कश्ती किनारे आ ही लगी-पार हो गई;
अब सिर्फ चार हाथ लगाने की देर है!
तुम शेर हो दिलेर हो दुश्मन भी ज़ेर है!

तुमको पुकारती हैं हिमालय की चोटियाँ,
रोती ग़मे ग़ुलामी से हैं सारी नदियाँ;
उठता जिगर से फ़िलअए-दिल्ली के है धुवाँ,
क़ुरबान तुम पै हिंद के लाखों हैं नौजवाँ;
तुम ख़ुद हो एक-एक बहुत लाख-लाख को!
हाँ, तेग के धनी हो न खोओगे साख को!

चालीस कोटि बंधु न दबके रहेंगे हम,
दरिया को पाट देंगे जो मिलके बहेंगे हम;
हों एक तो किसी के सितम क्यों सहेंगे हम,
'जाँ देके भी ये सौदा है सस्ता' कहेंगे हम;
ग़ैरों का अब निशान वतन में न छोड़ेंगे!
जैसे भी हो, ग़ुलामी की जंज़ीर तोड़ेंगे!

भाई हो और किससे कहें अपने घर की बात,
सच कहने में नहीं है किसी को भी डर की बात;
क्या माल है करेंगे न हम मालोज़र की बात;
मोड़ो न मुँह जी आपड़े जानो जिगर की बात;
सर दो वतन को फ़र्ज़ मुहब्बत अदा करो!
आज़ादी चाहते हो तो क़ीमत अदा करो!

जो भरा नहीं है भावों से
बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है
जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं



गिरिजा कुमार माथुर

पन्द्रह अगस्त

आज जीत की रात
पहरुए! सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना

प्रथम चरण है नए स्वर्ग का
है मंज़िल का छोर
इस जनमंथन से उठ आई
पहली रत्न-हिलोर
अभी शेष है पूरी होना
जीवन-मुक्ता-डोर
क्योंकि नहीं मिट पाई दुख की
विगत साँवली कोर
ले युग की पतवार
बने अम्बुधि समान रहना।

विषम शृंखलाएँ टूटी हैं
खुली समस्त दिशाएँ
आज प्रभंजन बनकर चलतीं
युग-बंदिनी हवाएँ
प्रश्नचिह्न बन खड़ी हो गईं
यह सिमटी सीमाएँ
आज पुराने सिंहासन की
टूट रही प्रतिमाएँ
उठता है तूफ़ान, इन्दु! तुम
दीप्तिमान रहना।

ऊँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी
छायाओं का डर है
शोषण से है मृत समाज
कमज़ोर हमारा घर है
किन्तु आ रहा नई ज़िन्दगी
यह विश्वास अमर है
जन-गंगा में ज्वार,
लहर तुम प्रवहमान रहना
पहरुए! सावधान रहना।



शिवमंगल सिंह सुमन

मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला

(हिंदू-मुस्लिम दंगों की बर्बर रक्तस्नात विभीषिका से व्यग्र होकर रचित। जनवाणी अप्रैल, 1947 में प्रकाशित हुई। आरंभ से साम्राज्यवादी शासकों ने जनता में फूट डालने के लिए समुदायों में परस्पर विद्वेष पैदा करने के लिए अनेक चालें चली। हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों के संकीर्ण व स्वार्थी तत्वों की मदद से समाज में सांप्रदायिकता का जहर घोलते रहे। सांप्रदायिकता सद्भाव और एकता बनाए रखना राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य मुद्दा रही। साहित्यकारों ने इसमें सराहनीय भूमिका निभाई, लेकिन अंततः साम्राज्यवादी और सांप्रदायिक शक्तियां कामयाब हुई। आजादी के साथ ही भारत का विभाजन हुआ। भारत और पाकिस्तान नामक दो देश बने। विभाजन की त्रासदी में लाखों लोग उजड़े, सांप्रदायिक हिंसा का शिकार हुए। समाज की चेतना को मानो लकवा मार गया। साहित्याकारों ने इसे अभिव्यक्ति किया - सं.)

घर-आँगन सब आग लग रही
सुलग रहे वन-उपवन
दर-दीवारें चटख रही हैं
जलते छप्पर-छाजन।
तन जलता है, मन जलता है
जलता जन-धन-जीवन
एक नहीं जलते सदियों से
जकड़े गर्हित बंधन।
दूर बैठकर ताप रहा है, आग लगानेवाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।

भाई की गर्दन पर
भाई का तन गया दुधारा
सब झगड़े की जड़ है
पुरखों के घर का बँटवारा।
एक अकड़ कर कहता
अपने मन का हक़ ले लेंगे
और दूसरा कहता
तिलभर भूमि न बँटने देंगे।
पंच बना बैठा है घर में, फूट डालनेवाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।

दोनों के नेतागण बनते
अधिकारों के हामी
किंतु एक दिन को भी
हमको अखरी नहीं ग़ुलामी।
दानों को मोहताज हो गए
दर-दर बने भिखारी
भूख, अकाल, महामारी से
दोनों की लाचारी।
आज धार्मिक बना,धर्म का नाम मिटानेवाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।

होकर बड़े लड़ेंगे यों
यदि कहीं जान मैं लेती

कुल-कलंक-संतान
सौर में गला घोंट मैं देती।
लोग निपूती कहते पर
यह दिन न देखना पड़ता
मैं न बंधनों में सड़ती
छाती में शूल न गड़ता।
बैठी यही बिसूर रही माँ, नीचों ने घर घाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।
भगत सिंह, अशफ़ाक़,
लालमोहन, गणेश बलिदानी
सोच रहे होंगे, हम सबकी
व्यर्थ गई क़ुर्बानी।
जिस धरती को तन की
देकर खाद, ख़ून से सींचा
अंकुर लेते समय, उसी पर
किसने ज़हर उलीचा।
हरी भरी खेती पर ओले गिरे, पड़ गया पाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।

जब भूखा बंगाल, तड़प
मर गया ठोककर क़िस्मत
बीच हाट में बिकी
तुम्हारी माँ बहनों की अस्मत।
जब कुत्तों की मौत मर गए
बिलख-बिलख नर-नारी
कहाँ कई थी भाग उस समय
मर्दानगी तुम्हारी।
तब अन्यायी का गढ़ तुमने क्यों न चूर कर डाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझाने वाला।

पुरखों का अभिमान तुम्हारा
और वीरता देखी,
राम-मुहम्मद की संतानो
व्यर्थ न मारो शेख़ी।
सर्वनाश की लपटों में
सुख-शांति झोंकनेवालो
भोले बच्चों, अबलाओं के
छुरा भोंकनेवालो।
ऐसी बर्बरता का इतिहासों में नहीं हवाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।

घर-घर माँ की कलख
पिता की आह, बहन का क्रंदन
हाय, दुधमुँहे बच्चे भी
हो गए तुम्हारे दुश्मन?
इस दिन की ख़ातिर ही थी
शमशीर तुम्हारी प्यासी?
मुँह दिखलाने योग्य कहीं भी
रहे न भारतवासी।
हँसते हैं सब देख ग़ुलामों का यह ढंग निराला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।

जाति-धर्म-गृह-हीन
युगों का नंगा-भूखा-प्यासा
आज सर्वहारा तू ही है
एक हमारी आशा।
ये छल-छंद शोषकों के हैं
कुत्सित, ओछे, गंदे
तेरा ख़ून चूसने को ही
ये दंगों के फँदे।
तेरा एका, गुमराहों को राह दिखानेवाला।
मेरा देश जल रहा, कोई नहीं बुझानेवाला।



रामनरेश त्रिपाठी

युवकों की रण-यात्रा

जय के दृढ़ विश्वास-युक्त थे
दीप्तिमान जिनके मुख-मंडल
पर्वत को भी खंड-खंड कर
रज-कण कर देने को चंचल
फड़क रहे थे अति प्रचंड भुज—
दंड शत्रु-मर्दन को विह्वल
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल।

अपने शयनागार बंद कर
दिए नवोढ़ाओं ने तत्क्षण
बाँध दिए पतियों की कटि में
असि, कलाइयों में रण-कंकण...
माताओं ने विजय-तिलक कर
छिड़के थे जिन पर पवित्र जल
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल।

अरि-मर्दन के मनोभाव थे
जिनकी मुख-आकृति में लक्षित
जिनके हृदय पूर्व पुरुषों की
वीर-कथाओं से थे रक्षित
जिनमें शारीरिक बल से था
कहीं अधिक उद्दाम मनोबल
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल।

जिनकी नस-नस में विद्युत थी
आँखों में था क्रोध प्रज्वलित
छाती में उत्साह भरा था
वाणी में था प्राण प्रवाहित
मातृभूमि के लिए हृदय में
जिनके भरी भक्ति थी अविरल
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल।

माँ ने कहा—दूध की मेरी
लज्जा रखना रण में हे सुत!
स्त्री ने कहा—लौटना घर को
आर्यपुत्र! तुम विजय-श्री-युत
इन वचनों से गूँज रहे थे
जिनके श्रवण और अंत:स्तल
ग्राम-ग्राम से निकल-निकलकर
ऐसे युवक चले दल के दल।

एक हमारा देश



सियारामशरण गुप्त

एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश,
इस झंडे के नीचे निश्चित एक अमिट उद्देश।

देखा जागृति के प्रभात में एक स्वतंत्र प्रकाश;
फैला है सब ओर एक-सा एक अतुल उल्लास।
कोटि-कोटि कंठों में कूजित एक विजय-विश्वास,
मुक्त पवन में उड़ उठने का एक अमर अभिलाष!
सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं वैर-विद्वेष,
एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश।

कितने वीरों ने कर-करके प्राणों का बलिदान,
मरते-मरते भी गाया है इस झंडे का गान।
रक्खेंगे ऊँचे उठ हम भी अक्षय इसकी आन,
चक्खेंगे इसकी छाया में रस-विष एक समान।
एक हमारी सुख-सुविधा है, एक हमारा क्लेश,
एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश।

मातृभूमि की मानवता का जाग्रत जयजयकार;
फहर उठे ऊँचे से ऊँचे यह अविरोध, उदार।
साहस, अभय और पौरुष का यह सजीव संचार;
लहर उठे जन-जन के मन में सत्य अहिंसा प्यार!
अगनित धाराओं का संगम, मिलन-तीर्थ-संदेश:
एक हमारा ऊँचा झंडा, एक हमारा देश।

भारत माता की जय

सुरेंद्रपाल सिंह

भारत माता की जय भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान सबसे अधिक लगाया जाने वाला नारा था। भारत माता का उल्लेख सबसे पहले किरणचन्द्र बंदोपाध्याय के नाटक 'भारत माता' में आया था जो सन् 1873 में खेला गया था।

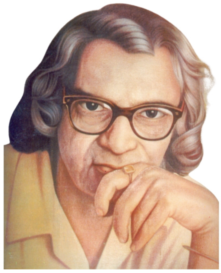
अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने सन् 1905 में पहली बार भारतमाता का चित्र उकेरा तो उसे ज्ञान, वैभव, अध्यात्मिकता, शान्ति के प्रतीक के रूप में बनाया गया था। इस चित्र में भारतमाता केसरिया वस्त्रों में चार भुजाओं में क्रमशः पुस्तक, माला, श्वेतवस्त्र, और धान की बाली धारण किए हुए है।

सन् 1936 में काशी में भी भारतमाता का एक मंदिर शिवप्रसाद गुप्त ने बनवाया था जिसका उद्घाटन गाँधी जी के हाथों हुआ था। लेकिन, यह मंदिर पूजा-पाठ, चढ़ावे, मन्नत वाला नहीं है। इसमें संगमरमर से उकेरा गया अविभाजित भारत का त्रियामी भौगोलिक मानचित्र है।

बात 1920 के दशक की है जब जवाहर लाल नेहरू संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के किसानों के नेता बन चुके थे। इसी सिलसिले में एक गांव में किसानों ने उनका स्वागत भारत माता की जय के नारों के साथ किया। उन्होंने ग्रामीणों से संवाद शुरू किया। उनका सवाल था कि आप जिसका जयकारा लगा रहे हैं वह भारत माता कौन है? जवाब कुछ यूं थे:

यह धरती ही हमारी माता है। ये नदी, पहाड़, खेत-खलिहान यही सब मिलकर भारत माता बनती है। इन्हें अंग्रेजों के जुल्म से आज़ाद कराना है।

तब नेहरू जी ने कहा, यह सब बातें जो आपने भारत माता के बारे में बताई हैं तो सही लेकिन यह तो हमेशा से हैं। आखिर धरती को या नदी, पहाड़ों को तो आजादी नहीं चाहिए। अंग्रेजी राज में जुल्म, गरीबी और भूखमरी का सामना तो आख़िरकार हम भारत के लोग ही कर रहे हैं। अगर हम ना हों तो इस धरती को भारत माता कौन कहेगा? तो जब हम भारत माता की जय बोलते हैं तो हम भारत के 30 करोड़ लोगों की जय बोलते हैं।इसलिए हम सब भारत माता का एक-एक टुकड़ा हैं और हम सबसे मिलकर ही भारत माता बनती है। तो जब भी हम भारत माता की जय बोलते हैं तो अपनी ही जय बोल रहे हैं। और, जिस दिन हमारी गरीबी दूर हो जाएगी, हमारे तन पर कपड़ा होगा, हमारे बच्चों को अच्छी से अच्छी तालीम मिलेगी, हम सब कुशल होंगे, उस दिन भारत माता की सच्ची जय होगी।



सुमित्रानंदन पंत

भारत माता

भारतमाता
ग्रामवासिनी।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।

दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्णा मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी।

तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु तल निवासिनी!
स्वर्ण शस्य पर-पदतल लुंठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित,
क्रंदन कंपित अधर मौन स्मित,
राहु ग्रसित
शरदेंदु हासिनी।

चिंतित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन श्री छाया शशि उपमित,
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जग जननी
जीवन विकासिनी!

अख़्तर शीरानी

देश से आनेवाले बता

ओ देश से आनेवाले बता
क्या अब भी शफक के सायो में
दिन-रात के दामन मिलते हैं?
क्या अब भी चमन में वैसे ही,
खुशरग शिगूफे खिलते है ?
बरसाती हवा को लहरों से,
भीगे हुए पौदे हिलते हैं ?
ओ देश से आनेवाले बता।

ओ देश से आनेवाले बता
शादाब-ओ शिगुफता फूलों से,
मामूर है गुलज़ार अब कि नहीं?
बाजार में मालिन लाती है,
फूलों के गूंधे हार अब कि नहीं?
और शौक से टूटे पड़ते हैं,
नौखेज खरीदार अब कि नहीं?
ओ देश से आनेवाले बता॥

ओ देश से आनेवाले बता
क्या अब भी महकते मंदिर में
नाकूस की आवाज आती है ?
क्या अब भी मुकद्दस मस्जिद पर ,
मस्ताना अज़ां थर्राती है ?
और शाम के रगीं सायों पर,
इक अजमत-सी छा जाती है ?
ओ देश से आनेवाले बता।

ओ देश से आनेवाले बता
क्या अब भी फ़िजा के दामन में।
बरखा के समे लहराते हैं ?
क्या अब भी किनारे दरिया पर,
तूफान के झोंके आते हैं ?
क्या अब भी अँधेरी रातो में ,
मल्लाह तराने गाते हैं?
ओ देश से आनेवाले बता॥

ओ देश से आनेवाले बता
क्या हमको वतन के बागों की,
मस्ताना फिजाएं भूल गई ?
बरखा की बहारें भूल गई
सावन की घटाएं भूल गई ?
दरिया के किनारे भूल गए,
जंगल की हवाएँ भूल गई ?
ओ देश से आनेवाले बता

ओ देश से आनेवाले बता
क्या माची पै अब भी सावन में,
बरखा को बहारे छाती हैं ?
मासूम घरों से भोर भये,
चक्की को सदाएँ आती हैं ?
और याद में अपने मैके की,
बिछुडी हुई सखियाँ गाती हैं ?
ओ देश से आनेवाले बता।



बृज नारायण चकबस्त

मिटने वालों को वफ़ा का यह सबक याद रहे,
बेड़ियां पांवों में हों और दिल आज़ाद रहे।

एक साग़र भी इनायत न हुआ याद रहे,
साक़िया जाते हैं, महफ़िल तेरी आबाद रहे।

आप का हम से हुया था कभी समाने वफ़ा,
जालम मगर वो हुया था भी घड़ी याद रहे।

बाग में ले के जनम हम ने असीरी झेली,
हम से अच्छे रहे जंगल में जो आज़ाद रहे।

मुझ को मिल जाए चहकने के लिए शाख़ मेरी,
कौन कहता है कि गुलशन में न सय्याद रहे।

हुकम माली का है यह फूल न खिलने पाएं,
चुप रहे बाग में कोयल अगर आज़ाद रहे।

बाग़बाँ दिल से वतन को ये दुआ देता है,
मैं रहूँ या न रहूँ ये चमन आबाद रहे।

कौमी गीत

साग़र निज़ामी

दावा है हर आन हमारा
सारा हिन्दुस्तान हमारा
जंगल और गुल्ज़ार हमारे,
दरिया और कुहसार हमारे।
कुएं और बाजार हमारे,
फूल हमारे, खार हमारे।
हर घर हर मैदान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा॥
गो नहीं इसमें फौजी कुव्वत,
फिर भी बहुत है दिल में हिम्मत।
और हमारे साथ है कुदरत,
अब कोई ताकत कोई हुकूमत।
रोक तो दे तूफान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा॥
हमसे भारत की रौनक है,
आजादी दिन रात सबक है।
अपनी धनक है अपनी शफक है।
हर ज़र्रे पर अपना हक है।
खेत अपने दहकान हमारा॥
हिन्द का मालिक हर हिन्दी हो,
सिर्फ यहां एक कौम बसी हो।
वार न पाये ख्वाह कोई हो
चाहे वह खुद अपनी खुदी हो।
देख जरा अरमान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा॥

तराना-ए-हिन्द



मुहम्मद इकबाल

इकबाल का 'सारे जहां से अच्छा,' पहली बार 16 अगस्त 1904 को साप्ताहिक पत्रिका 'इत्तेहाद' में प्रकाशित हुआ था। हालांकि यह बच्चों के लिए लिखा गया था पर इसने जल्दी ही ब्रिटिश राज विरोधी गान का दर्जा हासिल कर लिया। आज भी सशस्त्र सेनाएं संगीतकार रविशंकर द्वारा रची इस गीत की भिन्न धुन पर मार्च करते हैं। इसे 'तराना-ए-हिंद' कहते हैं और कहते हैं कि महात्मा गांधी ने यरवदा जेल में इसे सौ से ज्यादा बार गाया था।

सारे जहां से अच्छा हिन्दुसतां हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी, येह गुलिसतां हमारा

गुरबत में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहां हमारा

परबत वो सब से ऊंचा, हमसाया आसमां का
वोह संतरी हमारा, वोह पासबां हमारा

गोदी में खेलती हैं इस की हज़ारों नदीयां
गुलशन है जिस के दम से रशके जिनां हमारा

ऐ आब रूद-ए-गंगा ! वोह दिन है याद तुझको
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा

मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दुसतां हमारा

यूनान-ओ-मिसर वह रोमा सब मिट गए जहां से
अब तक मगर है बाकी नाम-ओ-निशां हमारा

कुछ बात है कि हसती मिटती नहीं जहां से
सद्यों रहा है दुशमन दौर-ए-जहां हमारा

इकबाल कोयी महरम अपना नहीं जहां में
मालूम कया किसी को दरद-ए-नेहां हमारा

ये जंग है जंगे आज़ादी

मख्दूम मोहिउद्दीन

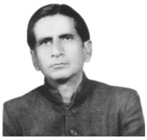
ये जंग है जंगे आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले।

हम हिन्द के रहने वालों की, महकूमों की मजबूरों की
आज़ादी के मतवालों की दहक़ानों की मज़दूरों की
ये जंग है जंगे आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले।

सारा संसार हमारा है, पूरब पच्छिम उत्तर दक्कन
हम अफ़रंगी हम अमरीकी हम चीनी जांबाज़ाने वतन
हम सुर्ख़ सिपाही ज़ुल्म शिकन, आहनपैकर फ़ौलादबदन।
ये जंग है जंगे आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले।

वो जंग ही क्या वो अमन ही क्या दुश्मन जिसमें ताराज न हो
वो दुनिया दुनिया क्या होगी जिस दुनिया में स्वराज न हो
वो आज़ादी आज़ादी क्या मज़दूर का जिसमें राज न हो।
ये जंग है जंगे आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले।

लो सुर्ख़ सवेरा आता है, आज़ादी का आज़ादी का
गुलनार] तराना गाता है, आज़ादी का आज़ादी का
देखो परचम लहराता है, आज़ादी का आज़ादी का।
ये जंग है जंगे आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले।



बोल! अरी, ओ धरती बोल!

मजाज़ लखनवी

बोल ! अरी, ओ धरती बोल !
राज सिंहासन डाँवाडोल!

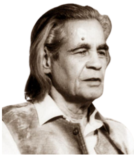
बादल, बिजली, रैन अंधियारी,
दुख की मारी परजा सारी
बूढ़े, बच्चे सब दुखिया हैं,
दुखिया नर हैं, दुखिया नारी
बस्ती-बस्ती लूट मची है,
सब बनिये हैं सब व्यापारी
बोल !अरी, ओ धरती बोल ! !
राज सिंहासन डाँवाडोल!

कलजुग में जग के रखवाले
चांदी वाले सोने वाले
देसी हों या परदेसी हों,
नीले पीले गोरे काले
मक्खी भुनगे भिन-भिन करते
ढूंढे हैं मकड़ी के जाले
बोल ! अरी, ओ धरती बोल !
राज सिंहासन डाँवाडोल!

क्या अफरंगी, क्या तातारी,
आँख बची और बरछी मारी
कब तक जनता की बेचैनी,
कब तक जनता की बे-ज़ारी
कब तक सरमाए के धंधे,
कब तक यह सरमायादारी
बोल ! अरी, ओ धरती बोल !
राज सिंहासन डाँवाडोल!

नामी और मशहूर नहीं हम,
लेकिन क्या मज़दूर नहीं हम
धोखा और मज़दूरों को दें,
ऐसे तो मजबूर नहीं हम
मंज़िल अपने पाँव के नीचे,
मंज़िल से अब दूर नहीं हम
बोल ! अरी, ओ धरती बोल !
राज सिंहासन डाँवाडोल!

बोल कि तेरी खिदमत की है,
बोल कि तेरा काम किया है
बोल कि तेरे फल खाये हैं,
बोल कि तेरा दूध पिया है
बोल कि हम ने हश्र उठाया,
बोल कि हम से हश्र उठा है
बोल कि हमसे जागी दुनिया
बोल कि हमसे जागी धरती
बोल ! अरी, ओ धरती बोल !
राज सिंहासन डाँवाडोल



अली सरदार जाफ़री

आगे बढ़ेंगे

वो बिजली-सी चमकी, वो टूटा सितारा,
वो शोला-सा लपका, वो तड़पा शरारा,
जुनूने-बग़ावत ने दिल को उभारा,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

गरजती हैं तोपें, गरजने दो इनको
दुहुल बज रहे हैं, तो बजने दो इनको,
जो हथियार सजते हैं, सजने दो इनको
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

कुदालों के फल, दोस्तों, तेज़ कर लो,
मुहब्बत के साग़र को लबरेज़ कर लो,
ज़रा और हिम्मत को महमेज़ कर लो,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

विज़ारत की मंज़िल हमारी नहीं है,
ये आंधी है, बादे-बहारी नहीं है,
जिरह हमने तन से उतारी नहीं है,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

हुकूमत के पिंदार को तोड़ना है,
असीरो-गिरफ़्तार को छोड़ना है
जमाने की रफ्तार को मोड़ना है,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

चट्टानों में राहें बनानी पड़ेगी,
अभी कितनी कड़ियां उठानी पड़ेंगी,
हज़ारों कमानें झुकानी पड़ेंगी,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

हदें हो चुकीं ख़त्म बीमो-रजा की,
मुसाफ़त से अब अज़्मे-सब्रआज़मां की,
ज़माने के माथे पे है ताबनाकी,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

उफ़क़ के किनारे हुए हैं गुलाबी,
सहर की निगाहों में हैं बर्क़ताबी,
क़दम चूमने आई है कामयाबी,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

मसाइब की दुनिया को पामाल करके,
जवानी के शोलों में तप के, निखर के,
ज़रा नज़्मे-गीती से ऊंचे उभर के,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

महकते हुए मर्ग़ज़ारों से आगे,
लचकते हुए आबशारों से आगे,
बहिश्ते-बरीं की बहारों से आगे,
बढ़ेंगे, अभी और आगे बढ़ेंगे!

हमारा देस

हकीम मुहम्मद मुस्तफा खां "मद्दाह"

जग से भला संसार से प्यारा।
दिल की ठण्डक आंख का तारा।
सबसे अनोखा सबसे नियारा।
दुनिया के जीने का सहारा
प्यारा भारत देस हमारा॥

इसके दरया, इसके समुन्दर।
इसके संगम, इसके बंदर[1]।
प्रेम की सूरत, प्रीत का समुंदर।
हुस्नो मुहब्बत का गहवारा।
प्यारा भारत देस हमारा॥

कितनी पुर कैफ़ इसकी अदाएं।
कितनी दिलकश इसकी फिजाएं।
मुश्क से बढ़कर इसकी हवाएं।
खुल्द से बेहतर इसका नजारा।
प्यारा भारत देस हमारा॥

मुल्क को हासिल हो आजादी।
खत्म हो दौरे सितम ईजादी।
दूर हो इसकी सब बरबादी
चर्ख पे चमके बन के तारा।
प्यारा भारत देस हमारा देस

हम में पैदा हो यक जाई।
सब हो बाहम भाई भाई।
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई।
गाएं मिलकर गीत यह प्यारा।
प्यारा भारत देस हमारा॥

मिले खुश्क रोटी जो आज़ाद रह कर।
तो वो ख़ौफ़ो जिल्लत के हलवे से बेहतर॥

जो टूटी हुई झोंपड़ी बेज़रर हो
भली उस महल से जहां कुछ ख़तर हो॥

मौलवी मुहम्मद "दरमाईल" मेरठी

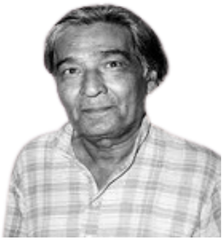
आज़ादी के तराने

(ब्रिटिश राज द्वारा प्रतिबंधित उर्दू साहित्य)

भारत का स्वाधीनता संग्राम और विविध भाषाओं में उपलब्ध समकालीन भारतीय साहित्य इस बात के स्पष्ट उदाहरण हैं जिस समय "गालिब" ने सन् 1857 ई. की दुखान्त घटनाओं से प्रभावित होकर अपनी गजल लिखी उस समय उनके सम्मुख अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्ति पाने की कोई कल्पना न थी। उनकी गजल में तो बस अंग्रेजों के अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध एक रोषपूर्ण वर्णन था। मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' और अलताफ हुसैन 'हाली' तक आते-आते राष्ट्र एवं देश की समस्याओं तथा राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलन सम्बन्धी विचार जन्म ले चुके थे। "इस्माईल" मेरठी और "सुरूर" जहांनाबादी के समय में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सुख चैन के त्याग की भावना, स्वाधीनता के लाभों की अभिव्यक्ति एवं पराधीनता के अभिशाप के विरुद्ध स्पष्ट प्रतिक्रियाएं एक स्पष्ट रूप धारण करने लगी थीं। यद्यपि उस समय भी देश-प्रेम और स्वाधीनता का प्राथमिक व धुंधला स्वरूप ही मिलता है, परन्तु राजनीतिक स्तर पर जैसे-जैसे देश में इस संघर्ष की भावना बढ़ने लगी "इकबाल" और "चकबस्त" आदि कवियों की रचनाओं में स्वाधीनता, राष्ट्रीयता और देश प्रेम के भाव भी स्पष्ट होने लगे। शायरे इन्कलाब "जोश" तक आते-आते जहां देश में भारत छोड़ो के नारे गूंज उठे वहीं साहित्यकारों तथा कवियों को भी वाणी मिल गई। इसके पश्चात् तो युवा कवियों का एक तांता सा लग गया जिसमें 'मजाज़', 'मखदूम' सरदार 'जाफरी', 'फैज़', 'अल्ताफ' मशहदी जैसे प्रसिद्ध कवियों के साथ-साथ 'कानून शिकन', 'मिर्ज़ा दबंग' और 'रौशन ख्याल' आदि अज्ञात नाम भी मिलते हैं

रक्त रंजित हृदय से निकली इन रचनाओं ने ब्रिटिश सरकार को बहुत ही भयभीत कर दिया था। उनकी यही कोशिश रही कि जनता तक पहुंचने से पहले ही इन रचनाओं को अपने अधिकार में ले लिया जाए। ब्रिटिश सरकार यद्यपि अपने इस उद्देश्य में पूर्णतः कभी भी सफल न हुई फिर भी उसने भारत की भावी पीढ़ी को यह बहुमूल्य साहित्यिक पूंजी उपलब्ध करा दी। राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम से ओत-प्रोत बहुत सी ऐसी उच्च श्रेणी की रचनाएं भी हैं जो कवि की विचारधारा एवं कल्पना का प्रतिनिधित्व करती हैं।

(राजेश कुमार परती, अभिलेख निदेशक, भारत सरकार द्वारा संपादित व राष्ट्रीय अभिलेखागार प्रकाशित "आज़ादी के तराने" नामक पुस्तक की भूमिका से)



जां निसार अख्तर

मैं उनके गीत गाता हूं

मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

जो शाने बग़ावत का अलम लेकर निकलते हैं,
किसी ज़ालिम हुकूमत के धड़कते दिल पे चलते हैं,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

जो रख देते हैं सीना गर्म तोपों के दहानों पर,
नजर से जिनकी बिजली कौंधती है आसमानों पर,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

जो आज़ादी की देवी को लहू की भेंट देते हैं,
सदाक़त के लिए जो हाथ में तलवार लेते हैं,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

जो पर्दे चाक करते हैं हुकूमत की सियासत के,
जो दुश्मन हैं क़दामत के, जो हामी हैं बग़ावत के,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

भरे मज्मे में करते हैं जो शोरिशख़ेज तक़रीरें,
वो जिनका हाथ उठता है, तो उठ जाती हैं शमशीरें,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

वो मुफ़लिस जिनकी आंखों में है परतौ कहरे-यज़दां का,
नज़र से जिनकी चेहरा ज़र्द पड़ जाता है सुल्तां का,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

वो दहक़ां जिनके ख़िरमन में हैं पिन्हां बिजलियां अपनी,
लहू से ज़ालिमों के सींचते हैं खेतियां अपनी,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

वो मिहनतकश जो अपने बाज़ुओं पर नाज़ करते हैं,
वो जिनकी कौमों से देव इस्तिब्दाद डरते हैं,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

कुचल सकते हैं जो मज़दूर ज़र के आस्तानों को,
जो जलकर आग दे देते हैं जंगी कारख़ानों को,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

झुलस सकते हैं जो शोलों से कुफ्रो-दीं की बस्ती को,
जो लानत जानते हैं मुल्क में फ़िरक़ा-परस्ती को,
मैं उनके गीत गाता हूं, मैं उनके गीत गाता हूं!

वतन के नौजवानों में नए जज़्बे जगाऊंगा
मैं उनके गीत गाऊंगा, मैं उनके गीत गाऊंगा
मैं उनके गीत गाऊंगा, मैं उनके गीत गाऊंगा

"हिंदू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल है जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है और हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीयता की पहली शर्त है समाज में साम्यभाव का दृढ़ होना ।इसके बिना राष्टीयता की कल्पना ही नहीं की जा सकती।"

- प्रेमचंद

स्वाधीनता आंदोलन का वाम तेवर

गोपाल प्रधान



आज़ादी का अमृत महोत्सव उसके लिए लड़ने वालों को याद करने का भी मौका है। यह आज़ादी उपनिवेशवाद से लड़ाई करके हासिल की गयी थी। इस लड़ाई ने हमारे देश के भीतर स्वाधीनता की आकांक्षा को जन्म दिया था। आधुनिक भारत के रूप को बनाने में इस लड़ाई का निर्णायक योगदान है। जिसे आज देश की एकता कहा जाता है उसे न केवल भौगोलिक बल्कि भावनात्मक रूप से भी हासिल करने में आजादी की लड़ाई का योगदान है। सीधी बात यह है कि यदि अंग्रेजी राज को हम भारत की एकता का संस्थापक कहेंगे तो यह एकता महज ब्रिटिश भारत तक सीमित रहनी थी लेकिन आजादी की जंग उन इलाकों के साथ ही रजवाड़ों के भीतर भी चली थी। तेलंगाना में निज़ामशाही के विरुद्ध संघर्ष से लेकर कश्मीर में कबाइलियों के हमले को अपने दम पर नाकाम करते हुए महाराजा हरिसिंह की रियासत के भारत विलय तक देश के प्रत्येक क्षेत्र के लोगों ने उपनिवेशवाद से लड़ते हुए वर्तमान भारत की तस्वीर का निर्माण किया है। इस भौगोलिक समेकन के साथ ही आज़ादी के उस संघर्ष ने देश को भावनात्मक रूप से भी एकताबद्ध किया। धर्मों और संस्कृतियों से भरे इस देश में इस एकता को हासिल करने और कायम रखने के लिए जिन सिद्धांतों का सृजन किया गया उन्हें ही हम धर्मनिरपेक्षता और विविधता में एकता के नाम से जानते हैं। न केवल इतना बल्कि आज़ादी के बाद की आत्मनिर्भरता के लिए ही शुरू से स्वदेशी का भाव भी आज़ादी की लड़ाई के साथ जुड़ा रहा।

इस आंदोलन ने हिंदी साहित्य के लेखन को गहराई से प्रभावित किया। इसमें रचनात्मक के साथ वैचारिक लेखन भी शामिल था। प्रसिद्ध आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने उपनिवेशवाद को व्याख्यायित करते हुए इसे क्षात्र धर्म के साथ वणिक धर्म का मेल कहा। पुराने साम्राज्यों से उपनिवेशवाद का भेद करने के लिहाज़ से यह महत्वपूर्ण बात थी। इस सिलसिले में अन्य बातों के अतिरिक्त इसका भी उल्लेख जरूरी है कि बाल गंगाधर तिलक की शब्दावली से उनका प्रेरित होना और चंद्रशेखर आजाद से उनकी निकटता प्रामाणिक रूप से साबित हो चुकी है। इस प्रत्यक्ष संबंध को छोड़ दें तो भी उनके लेखन में स्वाधीनता आंदोलन की अनुगूंजें सुनी जा सकती हैं । अपने समय की साहित्यिक प्रवृत्ति छायावाद की पृष्ठभूमि के रूप में स्वाधीनता आंदोलन की विशेषता को उन्होंने दो मामलों में लक्ष्य किया। इस दौर में स्वाधीनता आंदोलन का प्रसार देहाती इलाकों में हुआ। याद दिलाने की बात नहीं

कि इस प्रसार में गांधी के आगमन का निर्णायक योगदान है। देहाती इलाकों में आंदोलन के प्रसार के चलते साहित्यिक रचनाओं का भी व्यापक प्रचार हुआ। दूर दूर तक मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' को लोग पढ़ते थे। इस किताब की विशेषता थी कि देश को काव्य ग्रंथ का विषय पहली बार बनाया गया था।

भारत के स्वाधीनता आंदोलन की दूसरी जिस बड़ी विशेषता का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने किया है वह उसकी अंतर्राष्ट्रीयता से जुड़ा हुआ है। उन्होंने कहा कि हमारे देश का स्वाधीनता आंदोलन दुनिया भर में मुक्ति के लिए चलने वाले संघर्षों के मेल में दिखायी पड़ा। उसका यह अंतर्राष्ट्रीय पहलू इस बात से भी प्रकट है कि 1857 में जब उसकी शुरुआत हुई तो लंदन में रह रहे मार्क्स का उसे समर्थन मिला। उसके तीन साल पहले ही रेल आने के अवसर पर मार्क्स ने लिखा कि इसका लाभ भारत देश को तब मिलेगा जब भारतीय लोग ब्रिटेन की सत्ता उखाड़ फेंकें या ब्रिटेन में मजदूर वर्ग पूंजीपतियों का शासन खत्म कर दे। ध्यान देने की बात है कि भारत संबंधी ये लेख मार्क्स ने अमेरिका के एक अखबार में लिखे थे । स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े हुए लगभग सभी नेताओं ने विभिन्न अवसरों पर अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों का उल्लेख किया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात थी कि वे अपने देश की तरह ही सभी देशों की आजादी चाहते थे। न केवल इतना बल्कि वे अंग्रेजी राज के विस्तार के लिए दुनिया भर में जारी युद्धों में भारतीयों की भागीदारी की भी मुखालफ़त करते थे।

स्वाधीनता आंदोलन ने जिस भावना को व्यापक मान्यता प्रदान करायी वह सभी मनुष्यों को मुक्ति की प्रेरणा प्रदान करती थी। स्वतंत्रता के बारे में इसी सोच ने जयशंकर 'प्रसाद' की कविता में हिमाद्रि तुंग श्रृंग पर 'स्वयंप्रभा, समुज्ज्वला स्वतंत्रता' को प्रतिष्ठित कराया जिसको ही हासिल करने के लिए अमर्त्य वीर पुत्रों को बढ़े चलना था। यहां तक कि 'निराला' ने सरस्वती से जो वर मांगा वह भारत में प्रिय स्वतंत्र रव भरने का था जो अमृत मंत्र नव भी था। स्वतंत्रता का यह स्वर ही नया मंत्र था जिसे भारत में गुंजा देने की प्रार्थना निराला ने सरस्वती से की। समसामयिक साहित्य को प्रभावित करने की स्वाधीनता आंदोलन की क्षमता का कारण विशाल जनसमुदाय को आंदोलन में बड़े पैमाने पर शामिल कर लेना था। इसके कारण ही उस दौर के साहित्यिक लेखन को व्यापक लोकप्रियता हासिल हुई। सबको शिक्षा नहीं सुलभ थी इसलिए सार्वजनिक पुस्तकालयों की लड़ी के सहारे लोगों ने किताबें पायीं और पढ़ीं। आंबेडकर ने शिक्षित होने की बात सबसे पहले अनायास नहीं की थी।

अंग्रेजी राज ने अपने स्थायित्व के लिए लोगों को विभाजित करने की नीति अपनायी थी इसलिए भी स्वाधीनता आंदोलन को जनता की एकता स्थापित करने की योजना बनानी पड़ी। धार्मिक एकता की बात हमने पहले ही की है। लगभग प्रत्येक कदम पर हमें इसके सबूत मिलते हैं। कारण यह भी था कि अंग्रेजों से पहले के शासन में धार्मिक आधार पर भेदभाव के

न के बराबर उदाहरण दिखाई देते हैं। इसी विरासत को 1857 की क्रांति ने अपनाया था। इसमें बेगम हज़रत महल से लेकर झांसी की रानी लक्ष्मीबाई तक और मौलवी अहमदुल्ला शाह से लेकर नाना फड़नवीस तक शामिल रहे । इसके बाद भी कांग्रेस के अध्यक्षों में दादा भाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैयबजी से लेकर गोपालकृष्ण गोखले तक थे। गांधी के आने के बाद तो यह एकता स्वाधीनता की लड़ाई का आधार ही बन गयी। कांग्रेस की धारा से अलग क्रांतिकारियों की धारा में अशफ़ाक उल्ला खान, राम प्रसाद बिस्मिल, चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह की दोस्ती को कौन भुला सकता है! जिस जलियांवाला बाग को पर्यटन के अनुकूल बनाने के लिए लहू के निशान तो मिटाये ही गये, उस पर बनी फ़िल्म 'सरदार उधम' को घृणा का प्रचार कहकर आस्कर में भेजने से रोक दिया गया उस सभा को संबोधित करने वालों में सैफ़ुद्दीन किचलू भी थे। बहुत बाद में नौसेना विद्रोह के जिन नेताओं का मुकदमा लड़ने के लिए नेहरू ने काफी अरसे बाद वकीलों का कोट पहना उनमें कैप्टन सहगल के साथ कैप्टन शाहनवाज़ भी थे ।

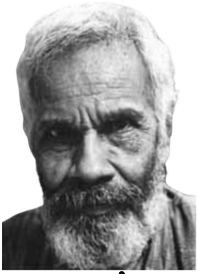
धार्मिक एकता के ही दायरे में बौद्ध धर्म भी आता है। स्वाधीनता के बाद आंबेडकर ने धर्म बदलकर बौद्ध धर्म ग्रहण किया लेकिन उस आंदोलन के दौरान भी बहुतेरे लोग बौद्ध धर्म से जुड़े रहे। इनमें से राहुल सांकृत्यायन का नाम तो सभी जानते हैं जिनका नाम ही बुद्ध के पुत्र के नाम पर रखा गया। उनके अतिरिक्त हिंदी के प्रसिद्ध कवि नागार्जुन का नाम भी मशहूर बौद्ध दार्शनिक के नाम पर रखा है । लेखन के स्तर पर भी आचार्य नरेंद्र देव ने बौद्ध दर्शन के बारे में पुस्तक लिखी। मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'यशोधरा' महात्मा बुद्ध की पत्नी के नाम पर लिखी गयी। रामवृक्ष बेनीपुरी से लेकर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी तक बहुत सारे विद्वानों ने बुद्ध के जीवन को रचना का विषय बनाया। रामचंद्र शुक्ल ने तो 'लाइट ऑफ़ एशिया' का हिंदी काव्यानुवाद 'बुद्धचरित' के नाम से किया। कहने की जरूरत नहीं कि इसके पीछे केवल धार्मिक एकता की ही बात नहीं थी । उस समय के नेतागण जानते थे कि वे एशियाई जागरण के अंग हैं और हमारे अधिकांश पड़ोसी देशों से हमारी दोस्ती बुद्ध के बहाने हो सकती है। उस समय के बौद्धिक भारत को आजादी के बाद पड़ोसी देशों का मित्र ही बनाना चाहते थे।

स्वाधीनता आंदोलन के इस पहलू के साथ ही लोकतंत्र की धारणा भी जुड़ी हुई है। लोकतंत्र केवल बहुमत का शासन ही नहीं है। बहुमत के साथ ही अल्पमत को भी अभिव्यक्ति और अन्य तमाम किस्म की आजादियों के बिना लोकतंत्र को बहुत आसानी के साथ बहुमत की तानाशाही में बदला जा सकता है। इस खतरे को पहचानने के कारण ही आजादी के संघर्ष के दौरान ही सामाजिक एकता का भी ताना बाना बुना गया। समाज सुधार की तत्कालीन कोशिशों को भी उसी संघर्ष का अंग मानना होगा क्योंकि सभी नेता जानते थे कि पुराने भारत में लौटना सम्भव नहीं। नये भारत की उस समय जो भी तस्वीर बनायी गयी उसमें जातिवाद

जनित भेदभाव के विरोध के साथ ही स्त्री की सहभागिता का तत्व भी जुड़ा रहता था। राजनीति के स्तर पर भले ही समाज सुधार और राजनीतिक अधिकार की धाराओं में भिन्नता रही हो लेकिन साहित्य के लिए उनकी एकता और मेल के कारण ही प्रेमचंद के साहित्य का उदय हुआ जिसमें अंग्रेजी राज के विरोध के साथ ही जातिभेद का विरोध तथा जमींदारों के शोषण का विरोध था।

आगामी भारत की आत्मनिर्भरता के लिहाज से आजादी मिलने से पहले ही तमाम आर्थिक उपाय सोचे गये थे जिनमें सबसे महत्वपूर्ण उपाय योजना आयोग का गठन था। इसी तरह स्वावलम्बन के लिए ही आंबेडकर ने 'राजकीय समाजवाद' का प्रस्ताव किया था। भूलना नहीं चाहिए कि आंबेडकर मूल रूप से अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रहे थे। उनके अमेरिकी प्रवास के अनुभव ने ही उन्हें रिजर्व बैंक का सपना दिया जो आर्थिक उथल पुथल के समय निजी पूंजी की स्वेच्छाचारिता पर लगाम लगाने का काम करने वाली संस्था होनी थी। कहना न होगा कि आजादी के आंदोलन के इस स्वरूप को गढ़ने में रूस की समाजवादी क्रांति का गहरा दबाव था। इसी वाम दबाव ने हमारे संविधान में देश की प्रभुसत्ता का मालिक 'हम भारत के लोग' को बनाया । इनमें मजदूर और किसान बहुमत में थे जिनको ट्रेड यूनियनों तथा किसान सभाओं के झंडे तले संगठित करने में वामपंथियों ने निर्णायक भूमिका निभायी। शायद इसीलिए लेखकों को भी प्रगतिशील लेखक संघ में एकत्र करने में उनकी भूमिका बेहद प्रभावी रही थी। साथ ही स्वस्थ राजनीतिक नेताओं की नयी पौध का निर्माण करने के लिए विद्यार्थियों को एकजुट करने में भी वामपंथियों ने गहरी रुचि ली।





नागार्जुन

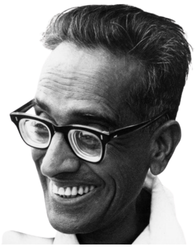
किसकी है जनवरी

किसकी है जनवरी,
किसका अगस्त है?
कौन यहाँ सुखी है, कौन यहाँ मस्त है?
सेठ है, शोषक है, नामी गला-काटू है
गालियाँ भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है
चोर है, डाकू है, झुठा-मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा-लबार है
जैसे भी टिकट मिला
जहाँ भी टिकट मिला
शासन के घोड़े पर वह भी सवार है
उसी की जनवरी छब्बीस
उसी का पन्द्रह अगस्त है
बाक़ी सब दुखी है, बाक़ी सब पस्त है.....

कौन है खिला-खिला, बुझा-बुझा कौन है
कौन है बुलन्द आज, कौन आज मस्त है?
खिला-खिला सेठ है, श्रमिक है बुझा-बुझा
मालिक बुलन्द है, कुली-मजूर पस्त है
सेठ यहाँ सुखी है, सेठ यहाँ मस्त है
उसकी है जनवरी, उसी का अगस्त है

पटना है, दिल्ली है, वहीं सब जुगाड़ है
मेला है, ठेला है, भारी भीड़-भाड़ है
फ्रिज है, सोफ़ा है, बिजली का झाड़ है
फ़ैशन की ओट है, सब कुछ उघाड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन लो
मास्टर की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन लो
मज़दूर की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो जी, गिन लो
बच्चे की छाती में कै ठो हाड़ है!
देख लो जी, देख लो जी, देख लो
पब्लिक की पीठ पर बजट पर पहाड़ है!
मेला है, ठेला है, भारी भीड़-भाड़ है
पटना है, दिल्ली है, वहीं सब जुगाड़ है
फ्रिज है, सोफ़ा है, बिजली का झाड़ है

महल आबाद है, झोपड़ी उजाड़ है
ग़रीबों की बस्ती में
उखाड़ है, पछाड़ है
धत तेरी, धत तेरी, कुच्छो नहीं! कुच्छो नहीं
ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
ताड़ के पत्ते हैं, पत्तों के पंखे हैं
पंखों की ओट है, पंखों की आड़ है
कुच्छो नहीं, कुच्छो नहीं.....
ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है
किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है!
कौन यहाँ सुखी है, कौन यहाँ मस्त है!
सेठ ही सुखी है, सेठ ही मस्त है
मन्त्री ही सुखी है, मन्त्री ही मस्त है
उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त है!



शमशेर बहादुर सिंह

भारत की आरती

भारत की आरती
देश-देश की स्वतंत्रता देवी
आज अमित प्रेम से उतारती।

निकटपूर्व, पूर्व, पूर्व-दक्षिण में
जन-गण-मन इस अपूर्व शुभ क्षण में
गाते हों घर में हों या रण में
भारत की लोकतंत्र भारती।

गर्व आज करता है एशिया
अरब, चीन, मिस्र, हिंद-एशिया
उत्तर की लोक संघ शक्तियां
युग-युग की आशाएं वारतीं।

साम्राज्य पूंजी का क्षत होवे
ऊंच-नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।

जन का विश्वास ही हिमालय है
भारत का जन-मन ही गंगा है
हिन्द महासागर लोकाशय है
यही शक्ति सत्य को उभारती।

यह किसान कमकर की भूमि है
पावन बलिदानों की भूमि है
भव के अरमानों की भूमि है
मानव इतिहास को संवारती।

राष्ट्रगीत में भला कौन वह



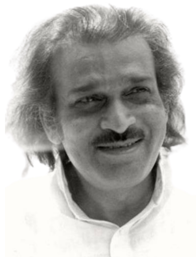
रघुवीर सहाय

राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत भाग्य विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है।

मखमल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चंवर के साथ
तोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय-जय कौन कराता है।

पूरब पच्छिम से आते हैं
नंगे-बूचे नर कंकाल
सिंहासन पर बैठा, उने
तमगे कौन लगाता है।

कौन-कौन है वह जन-गण-मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है।



सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

देश कागज पर बना नक्शा नहीं होता

यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में आग लगी हो
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में सो सकते हो?
यदि तुम्हारे घर के एक कमरे में
लाशें सड़ रहीं हों
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में प्रार्थना कर सकते हो?
यदि हाँ
तो मुझे तुम से
कुछ नहीं कहना है।

देश कागज पर बना
नक्शा नहीं होता
कि एक हिस्से के फट जाने पर
बाकी हिस्से उसी तरह साबुत बने रहें
और नदियां, पर्वत, शहर, गांव
वैसे ही अपनी-अपनी जगह दिखें
अनमने रहें।
यदि तुम यह नहीं मानते
तो मुझे तुम्हारे साथ
नहीं रहना है।

इस दुनिया में आदमी की जान से बड़ा
कुछ भी नहीं है
न ईश्वर
न ज्ञान
न चुनाव
कागज पर लिखी कोई भी इबारत
फाड़ी जा सकती है
और जमीन की सात परतों के भीतर
गाड़ी जा सकती है।

जो विवेक
खड़ा हो लाशों को टेक
वह अंधा है
जो शासन
चल रहा हो बंदूक की नली से
हत्यारों का धंधा है
यदि तुम यह नहीं मानते
तो मुझे
अब एक क्षण भी
तुम्हें नहीं सहना है।

याद रखो

एक बच्चे की हत्या
एक औरत की मौत
एक आदमी का
गोलियों से चिथड़ा तन
किसी शासन का ही नहीं
सम्पूर्ण राष्ट्र का है पतन।

ऐसा खून बहकर
धरती में जज्ब नहीं होता
आकाश में फहराते झंडों को
काला करता है।
जिस धरती पर
फौजी बूटों के निशान हों
और उन पर
लाशें गिर रही हों
वह धरती
यदि तुम्हारे खून में
आग बन कर नहीं दौड़ती
तो समझ लो
तुम बंजर हो गये हो-
तुम्हें यहां सांस लेने तक का नहीं है अधिकार
तुम्हारे लिए नहीं रहा अब यह संसार।

आखिरी बात
बिल्कुल साफ
किसी हत्यारे को
कभी मत करो माफ
चाहे हो वह तुम्हारा यार
धर्म का ठेकेदार,
चाहे लोकतंत्र का
स्वनामधन्य पहरेदार।



फ़ैज अहमद फ़ैज

बोल कि लब आज़ाद हैं तेरे

बोल कि लब आज़ाद हैं तेरे
बोल ज़बाँ अब तक तेरी है
तेरा सुतवाँ जिस्म है तेरा
बोल कि जाँ अब तक तेरी है
देख के आहंगर की दुकाँ में
तुंद हैं शोले सुर्ख़ है आहन
खुलने लगे क़ुफ़्फ़लों के दहाने
फैला हर एक ज़न्जीर का दामन
बोल ये थोड़ा वक़्त बहोत है
जिस्म-ओ-ज़बाँ की मौत से पहले
बोल कि सच ज़िंदा है अब तक
बोल जो कुछ कहने है कह ले

रत्नसिंह

अरे जागो भारत के नर नारी बहतेरे सो लिये
उठो भारत के नर नारी बहतेरे सो लिये - टेक

बहुत घने दिन बीत गए सैं उतरा आंख तै ना जाला
कद तै विदेशी राज करै सै इतना भी ना देख्या भाला
माया थारी परदेश गई सै लिकडेगा फिर और कै दिवाला
सारी दुनियां जाग गई सै पर भारत में हो रहा चाला
जो मालिक थे और सरदार गुलाम अंग्रेज के हो लिये

भारत बाग अति सुन्दर था, इसमें पतझड़ आन डटी सै
शोभा थी इसकी देखन जोगी कोई दिन तैं अब आब घटी सै
आवेंगे सब फूल कहां तै हरीयाली भी दूर हटी सै
भूलै माली तै या तो रांद कटी सै
खुद आमां की दी काट कतार और नागफन वो लिए

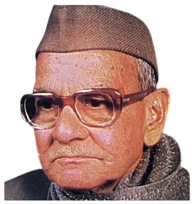
सारै देशों में आजादी की भाईयो या पवन चले सै
सारे बहै से स्वराज की गंगा भारत यूं दुःख झेले सै
या हालत हो रही इस मुर्दे को हाथ पांव नहीं कान हिले सै
ब्योरा नहीं तने अब तक हो रहा दुश्मन छाती पै दाल दले सै
तू भी हिम्मत कर एक बार दाग गुलामी के धो लिए

जिस पर हमने राज करा सै करने लागे हम उनका गुलामी
जो छूते थे चरण हमारे दे रहे आज उनको सलामी
जिनका नाम पुजता था हो रही आज उनकी बदनामी
सोने की लंका तोड़ी जिनने आज बोली जा उनके घर की निलामी

उठ राम लखन के परिवार तू भी अखियां खोलिए

देश का साथ दिया ना जिनने, लिया अपना जन्म निकारत
देखो सो के बैठे-बैठे जकड़ा पड़ा सै गुलामी में भारत
भारत की तुम लाज बचाओ तज कर अपना अपना स्वार्थ
कहने बिसर कोई बात रही ना, चाहे बस जाओ चाहे हो जाओ गारत
न्यू कहता रत्नसिंह लाचार नेता थारे कैदी हो लिए

(साभार - राम सिंह जाखड़, आप बीती और अनुभव से)



द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

उठो धरा के अमर सपूतो

उठो, धरा के अमर सपूतो।
पुन: नया निर्माण करो।
जन-जन के जीवन में फिर से
नव स्फूर्ति, नव प्राण भरो।

नई प्रात है नई बात है
नया किरन है, ज्योति नई।
नई उमंगें, नई तरंगें
नई आस है, साँस नई।
युग-युग के मुरझे सुमनों में
नई-नई मुस्कान भरो।
उठो, धरा के अमर सपूतों।
पुन: नया निर्माण करो।

डाल-डाल पर बैठ विहग कुछ
नए स्वरों में गाते हैं।
गुन-गुन, गुन-गुन करते भौंरें
मस्त उधर मँडराते हैं।
नवयुग की नूतन वीणा में
नया राग, नव गान भरो।
उठो, धरा के अमर सपूतों।
पुन: नया निर्माण करो।

कली-कली खिल रही इधर
वह फूल-फूल मुस्काया है।
धरती माँ की आज हो रही
नई सुनहरी काया है।
नूतन मंगलमय ध्वनियों से
गुँजित जग-उद्यान करो।
उठो, धरा के अमर सपूतों।
पुन: नया निर्माण करो।

सरस्वती का पावन मंदिर
शुभ संपत्ति तुम्हारी है।
तुममें से हर बालक इसका
रक्षक और पुजारी है।
शत-शत दीपक जला ज्ञान के
नवयुग का आह्वान करो।
उठो, धरा के अमर सपूतों।
पुन: नया निर्माण करो।

बाल मन का सांप्रदायिकरण

अरुण कुमार कैहरबा



कविताएं सदा से मानव मन को आकर्षित करती रही हैं। नन्हें बच्चों के मन पर माँ की लोरियों का सकारात्मक असर होता है। कविताएं बच्चों की भाषा के विकास के साथ ही उनके भावनात्मक विकास के महत्वपूर्ण साधन के रूप में पहचानी जाती हैं। कविताएं बच्चों की संवेदनाओं और सृजनशीलता को नए आयाम देने का काम करती हैं। एक के बाद एक कविताएं याद करते और गाते हुए बच्चों में खुद भी तुकबंदी करने की लालसा होती है। कई बार वे खुद इस तरह की पंक्तियों का सृजन करके चमत्कृत महसूस करते हैं।

अपने ही बचपन को याद करें तो कितनी ही कविताएं सुनते पढ़ते ही मन-मस्तिष्क और जुबान पर राज करने लगती थी। स्कूलों में नन्हीं कविताओं और गीतों के जरिये बच्चों को मानवीय, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों से लैस करने की कल्पना की जाती है। बहुत सी बाल कविताओं और गीतों को गाते हुए बच्चों के पांव तक थिरकने लगते हैं।

स्कूलों में देशभक्ति और संवैधानिक मूल्यों के विकास में भी कविताओं की अहम भूमिका होती है। उत्तराखंड के विकास नगर के पास स्थित गांव लक्ष्मीनगर की पूर्व सरपंच व अध्यापिका शीला राठौर से जब इस बारे में बताया कि उस समय टेलीविजन और स्मार्टफोन नहीं होते थे। स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में पढ़ी गई कविताएं हमें खूब आकर्षित करती थी। रेडियो के साथ-साथ वाहनों में देशभक्ति गीत गूंजते थे। सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध कविता 'झांसी की रानी' उन्होंने स्कूल के कार्यक्रमों में खूब सुनाई। 'बच्चे मन के सच्चे', 'दे दी हमें आजादी बिना खड़ग बिना ढ़ाल', 'हर कर्म अपना करेंगे ऐ वतन तेरे लिए' सहित कितने ही गीत भी स्कूल के कार्यक्रमों में उन्हें खूब गाने के अवसर मिले। अध्यापक महिन्द्र खेड़ा व राज कुमार जांगड़ा से बात की गई तो उन्हें ये जानवर कविता याद आ गई। बचपन में पढ़ी-सीखी कविता की पंक्तियां उन्होंने इस प्रकार सुनाई -

भालू चीता बाघ लोमड़ी गीदड़ या खरगोश
जंगल में तुम देख सकोगे जाने का हो जोश
गाय भैंसें भेड़ बकरियां मैदानों में चरती
लौट शाम जब घर को आती घड़े दूध के भरती।

कविताएं व गीत बच्चों को आज भी प्रिय हैं, लेकिन फिल्मों व म्यूजिक एलबम के अश्लील व हिंसा फैलाने वाले गीतों का परिवेश पर वर्चस्व हो गया है। उच्च गुणवत्ता की वीडियो व संगीत के साथ गाए जाने वाले फिल्मी गीतों का आकर्षण सर चढ़ बोल रहा है। उनकी विषय-वस्तु, भाषा और प्रस्तुति भले ही बाल मन के कितने ही प्रतिकूल क्यों ना हो। बाजार से प्रेरित हिंसक, द्विअर्थी व फूहड़ गीत प्राय: ही बच्चे स्कूल में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों व बाल सभाओं में भी लेकर आते हैं। ऐसे ही गीतों पर नृत्य प्रस्तुतियां भी होती हैं।

गीतों और कविताओं की सामग्री को एक तरफ जहां बाजार प्रेरित कर रहा है। वहीं युद्धोन्माद, अंध-राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता, धर्म पर संकट, अन्य धर्मों को दुश्मन की तरह प्रस्तुत करके कविताओं और गीतों को साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश हो रही हैं। जब पूछा जाता है कि ये कविताएं कहां से सीखी तो वे बताते हैं कि यह कविता उन्होंने गांव में चलने वाली कक्षाओं के स्वयंभू शिक्षकों द्वारा सिखाई गई हैं। इन कविताओं को देशभक्ति की कविताएं कहा जाता है। लेकिन देशभक्ति की भावना से उनका दूर-दूर तक रिश्ता नहीं होता है। क्या देश के संवैधानिक मूल्यों की अवहेलना करते हुए कोई देशभक्ति व देशप्रेम अस्तित्व में आ सकता है? प्रात:कालीन सभा के लिए एक विशेष धर्म के देवी-देवताओं की स्तुति के रूप में लिखी गई भी ऐसी प्रार्थनाओं का चयन किया जाता है।

बच्चों के दिल-दिमाग को साम्प्रदायिकता से दूषित करने पर उतने सवाल खड़े नहीं होते हैं। कविताओं में राष्ट्रीय एकता, सद्भाव और भाईचारे की खुल्लमखुल्ला अवहेलना होती ही है, बल्कि पड़ोसी देश को दुश्मन की तरह प्रचारित करने की कोशिशें होती हैं। नन्हें बालकों के मन पर युद्ध की छाप छोड़ दी जाती है। अंधधार्मिक, अंध-राष्ट्रवादी और साम्प्रदायिक भावनाओं से भरी कविताओं की प्रस्तुति पर बच्चों को पुरस्कार आदि देकर सम्मानित किया जाता है। बच्चों को इस तरह की किताबें बांटी जाती हैं जो उनके कोमल मन पर संकीर्णताओं की छाप पड़ जाती है।

स्कूलों व समुदाय में बच्चों के बीच धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, न्याय, समानता, सामाजिक समरसता, सांझी संस्कृति आदि मूल्यों पर आधारित कविताओं को बच्चों में लेकर जाने की जरूरत है। ऐसी कितनी ही कविताएं व गीत हैं जिनका आनंददायी सस्वर वाचन व गायन, शिक्षण विधियां व बच्चों को सस्वर वाचन के लिए प्रोत्साहन करने से बच्चों की सुरुचियों का निर्माण कर सकते हैं।

संपर्क -इन्द्री, जिला-करनाल, (हरियाणा) मो.नं.-9466220145



वर्तमान परिवेश व बाल रचनात्मकता

डॉ. कुलदीप सिंह दीप

(सत्यशोधक फाउंडेशन व देस हरियाणा द्वारा 23 सितंबर, 2021 को पहला विपुला स्मृति व्याख्यान वर्तमान परिवेश व बाल रचनात्मकता विषय पर आयोजित किया गया। अध्यापक, रंगकर्मी एवं बाल साहित्यकार डॉ. कुलदीप सिंह दीप ने व्याख्यान दिया। पूरा व्याख्यान यहां प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसे हिन्दी प्राध्यापक व देस हरियाणा संपादक मंडल सदस्य अरुण कुमार कैहरबा ने लिपिबद्ध करके प्रस्तुत किया है।)

अपना गम लेके कहीं ओर ना जाया जाए।
घर में बिखरी हुई चीजों को सजाया जाए।
बाग में जाने के आदाब हुआ करते हैं।
किसी तितली को ना फूलों से उड़ाया जाए।
घर से मस्जिद है बहुत दूर चलो यूं कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को हंसाया जाए।

परिवेश बहुत महत्वपूर्ण होता है। कोई भी आदमी अपने परिवेश से मुक्त नहीं हो सकता। परिवेश हमारे साथ-साथ चलता है। विशेष तौर पर बच्चों के लिए परिवेश का महत और भी ज्यादा है। मैं एक प्रसंग से अपनी बात शुरू करता हूँ। क्योंकि मैं एक अध्यापक हूँ। मैं अक्सर बच्चों के बीच जाता हूँ। मैंने पंजाब में कई प्रोजेक्टस पर काम किया है। एक बड़ा प्रोजेक्ट था- पढ़ो पंजाब। उसमें मैं छह साल ट्रेनर के रूप में काम किया। उस दौरान की घटना है। मैंने एक स्कूल विजिट किया। उसमें एक लेडी टीचर थी, जो बच्चों को बाल सभा करवा रही थी। मैं बाल सभा में जाकर बैठ गया। मैंने मैडम को कहा कि कोई बच्चा कुछ सुनाए। मैडम ने तीसरी कक्षा के छोटे बच्चे को खड़ा किया और उसे कुछ सुनाने के लिए कहा। बच्चे अक्सर घबरा जाते हैं जब बाहर को कोई व्यक्ति आ जाता है। उस बच्चे ने कुछ नहीं सुनाया। मैंने बच्चे को गोद में लिया, पुचकारा और प्यार किया और बोला कि कुछ सुना। तो बच्चे ने कुछ सुनाया तो नहीं, लेकिन जवाब बहुत खूबसूरत दिया। बच्चे का उत्तर था कि सर जी मुझे तो दूसरा गीत आता है। ये दूसरा कौन सा होता है। दूसरे और पहले गीत में क्या अंतर है। दूसरा गीत वो होता है जो हमारे टीवी चैनलों पर रोज आता है, जो हमारे मोबाइल की रिंग टोन पर लगा होता है। जो हमारे मोबाइल की मैमोरी में ढ़ेरों-ढ़ेर पड़ा होता है। वो सभी दूसरे गीत हैं। बच्चे को पहला गीत क्यों नहीं आता था। पहले गीत कहां गए, जो बच्चे को नहीं आते थे। क्योंकि उसके परिवेश में पहले गीत नहीं थे। मैंने उस बच्चे को दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां जो भी गीत आता है, वह सुनाने के लिए कहा। उस बच्चे ने गीत सुनाया - कोई बंदा-बुंदा मारना तो दस्स। अब बच्चे के पास बंदा मारना तो दस आ गया। पर भगत सिंह का गीत नहीं आया। कोई लोरियों का गीत नहीं आया। कोई बाल गीत नहीं आया। दादी तेरी मोरनी को मोर ले गए, ऐसा कोई गीत नहीं आया। क्यों नहीं आया। क्योंकि 'बंदा-बुंदा मारना तो दस्स' एक दिन में दो सौ बार आता था। उसकी ऐड चलती थी टीवी पर। लेकिन भगत सिंह के गीत कोई बच्चा नहीं गाएगा। क्योंकि भगत सिंह के गीत हमारे परिवेश से गायब कर दिए गए हैं। हमारे टीवी चैनलों से गायब कर दिए गए हैं। हमारे जेबों में जो मोबाइल हैं, उनसे गायब हो गए हैं। हमारी रिंग-टोन से भी वे गीत गायब हो गए हैं। उनकी जगह पर बहुत सारा कुछ आ गया है, जो उस बच्चे ने कहा कि मुझे दूसरा आता है। परिवेश बच्चे के लिए इस रूप में बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि बच्चा सीखता ही परिवेश से है। परिवेश के बिना वह सीख ही नहीं सकता।

हमारी शिक्षा प्रणाली बदकिस्मती से लॉर्ड मैकॉले द्वारा शुरू किए गए पैटर्न पर चल रही है। अभी तक तो हम ज्ञान के पहले स्तर से ऊपर नहीं उठ सके। अध्यापकों व शिक्षा कर्म से जुड़े लोगों को पता है कि ज्ञान का सबसे निचला स्तर सूचना होता है। सूचना के बाद समझ, संवेदना और सृजना का नंबर आता है। हमारी शिक्षा प्रणाली पिछले 75 साल से लॉर्ड मैकॉले

द्वारा शुरू की गई पद्धति पर ही टिकी हुई है कि हम जानकारी लेते हैं और जानकारी देते हैं। हमारी शिक्षण और मूल्यांकन प्रणाली इसी जानकारी पर टिकी हुई है। जो बच्चा सूचना नहीं दे पाता, जो बच्चा याद नहीं कर पाता, वह हमारी नजरों में फेल है। तो रचनात्मकता या सृजनशीलता कहां से आएगी।

मैं आपको बहुत पीछे लिए चलता हूँ। मैंने विज्ञान नाटकों पर बहुत काम किया। मेरी एक सीरीज है विज्ञान नाटकों की। उसमें जब मैंने पहला नाटक लिखा थॉमस एडिसन के जीवन पर तो मैंने उसकी जीवनी को देखा। खासतौर पर उसके बचपन के पलों को देखा। जब हम उसके बचपन को देखते हैं तो उसके स्कूल ने उसे यह कह कर निकाल दिया था कि यह मंदबुद्धि बच्चा है। इसको ले जाइए। यह पढ़ नहीं सकेगा। उसकी माँ जब उस बच्चे को लेकर आई, वो बच्चा बहुत शरारती था। वह जो चीज उठाता था तो उसे तोड़ कर देखता था कि यह क्या चीज है। मूलतः यही रचनात्मकता है कि बच्चा समझने की कोशिश कर रहा है। पर हमारे स्कूलों के पाठ्यक्रम में समझ कहीं होती ही नहीं। जो बच्चा सबसे ज्यादा सृजनशील था, उसको स्कूल से निकाल दिया। वो बच्चा घर में कैद हो गया। उस बच्चे को बुरे सपने आने लगे। वह रात को सपनों में बड़बड़ाने लगा। वह एक बात बोलता था सपने में- 'माँ मैं अंधे कूएं में गिर गया हूँ। माँ यहां बहुत अंधेरा है। मुझे निकालिए माँ।' तो माँ उसकी चीखें सुनती रात को और बेबस हो जाती। फिर माँ ने सोचा और उससे पूछा तो उसने थोमस एडिसन को कुछ किताबें लाकर दी। वे किताबें अंधे कूएं में रोशनी की तरह थी। एडिसन ने वो किताबें पढ़ी। खूब पढ़ी। वो जितनी पढ़ता, माँ उसे और किताबें लाकर देती। थॉमस एडिसन वह व्यक्ति है, जिसने बल्ब का आविष्कार एडिसन ने किया। जिसको हमारे समाज ने अंधे कूएं में धकेल दिया था। आज तक विज्ञान के सबसे ज्यादा आविष्कार थॉमस एडिसन के नाम हैं।

उसके बाद मैंने गैलिलियो पर दूसरा नाटक लिखा। जब मैंने गैलिलियो का बचपन देखा, पढ़ा और समझा। बच्चे के अंदर संकल्प और रचनात्मकता कैसे पैदा होती है और स्कूल में हमारी शिक्षा प्रणाली बच्चों की रचनात्मकता को कैसे मार देती है। यह बात समझने वाली है। जब गैलिलियो पढ़ता था तो उसे होमवर्क से लाद दिया जाता था। हमारे यहां भी यही चलता है। हम बच्चों को ढ़ेरों होमवर्क दे देते हैं। यह लिखने का, यह पढ़ने का। यह याद करने का। जब गैलिलियो घर जाकर होमवर्क करता तो वह घंटों होमवर्क करता रहता था। एक दिन उसे शाम हो गई। अंधेरा होने को हो गया। उसने किताबें फेंक दी। किताबें फेंक कर बाहर खुले आसमान में आ गया। उसने देखा कि आसमान में तारे हैं। वह तारों में खो गया। वह अपनी कल्पना में चला गया। उसे लगा कि कोई एक तारा उसकी हथेली पर आ गया है। वह तारों से बात करता है। इस प्रसंग पर मैंने एक गीत लिखा था - बोल, बोल बोल तारे बोलदा क्यूं नीं। किन्नें तुसी सारे वे तू बोलदा क्यूं नीं। तेरी चमक बड़ी है, तेरी दमक बड़ी है, तू लेंदा है नजारे,

वे तू बोलदा क्यूं नीं। तारों में गुम हो जाने से तारों के साथ बातें करने से आसमान कुछ को जानने का संकल्प पैदा हुआ और पहली दूरबीन गैलिलियो ने उसका आविष्कार किया था। उसने पहली बार खोजा था कि धरती सूरज के इर्द-गिर्द घूमती है। इसे प्रमाणित किया था गैलिलियो ने।

सृजनात्मकता पाठ्यक्रम से कभी ऐसे पैदा नहीं होती, जैसे हम सिलेबस को ठूंसते हैं। सृजनात्मकता कहीं तुम्हारे अंदर से पैदा होती है। जब कोई सपना आता है कि सेब ऊपर क्यों नहीं जाता, नीचे ही क्यों आया है। जब प्रश्न पैदा होता है, तब सृजनात्मकता पैदा होती है। हम बच्चों के प्रश्नों को समाप्त कर रहे हैं। इसलिए हमारे बच्चों के पास कोई प्रश्न नहीं हैं। जब प्रश्न नहीं होंगे तो जिज्ञासा नहीं होगी। जिज्ञासा नहीं होगी तो हम सिर्फ सूचना पर केन्द्रित रहेंगे। हम कभी भी समझ पर नहीं जाएंगे। इसमें बहुत बारीक रेखा होती है - सूचना, समझ, संवेदना और सृजनात्मकता के बीच में। हम बच्चों को पढ़ाते हैं कि आदिमानव ने आग की खोज की थी। यह एक सूचना है। हम बच्चों को पढ़ाते हैं कि सावित्रीबाई फुले का जन्म इस तारीख को हुआ था। भगत सिंह की माता का नाम विद्यावती था। यह सूचनाएं हैं। हम बच्चों को दसवीं, बारहवीं और बीए तक ऐसी ही सूचनाएं देते रहते हैं। सूचना को भी बहुत सिकोड़ दिया है। हम बच्चे को कहते हैं कि बस इतना सा याद कर ले। इसमें से इतने नंबर आ जाएंगे। हमारा फोकस नंबर प्राप्त करना है। बच्चे को समझ देना नहीं है। हम बच्चे को सूचना के भार से लाद रहे हैं तो बच्चे में उसकी समझ विकसित नहीं होती। जब बच्चे को यह पता चल जाएगा कि आग कैसी होती है, आग क्या काम करती है, आग की हमें जरूरत क्या है। तो बच्चा सूचना से आगे बढ़कर समझ के स्तर पर आ गया।

समझ से आगे आती है - संवेदना। अगर आग बच्चे के पास है। तो वह आग का क्या करे। वह किसी का घर जला दे या उस आग से रोटी पका ले। इस बात का फैसला उसे संवेदना से करना है। अगर बंदूक बंदर के पास आ जाती है तो वह किसी को भी मार सकता है। अगर बंदूक किसी अच्छे सूझवान व्यक्ति के पास होती है तो वह सोचता है कि इसका प्रयोग कैसे करना है। हमारी शिक्षा प्रणाली बंदरों के हाथ में बंदूक दे रही है। क्योंकि हम संवेदना पैदा नहीं करते। किसी बात की संवेदना पैदा नहीं करते। हम बच्चों को बहुत सा ज्ञान रटा देते हैं। लेकिन उन्हें यह पता नहीं लगता कि यह ज्ञान कहां काम आएगा और कैसे काम आएगा। सिर्फ ज्ञान अपने आप में कुछ नहीं होता। एक ओबामा है, एक ओसामा है। दोनों का नाम आपने सुना होगा। ओबामा भी मोस्ट इंटेलिजेंट और ओसामा भी मोस्ट इंटेलिजेंट। लेकिन दोनों की दिशाएं अलग-अलग हैं। एक अपनी दिशा में शिखर तक पहुंचा। दुनिया के सबसे ताकतवर माने जाने वाले राष्ट्र का मुखिया बन गया। और एक दुनिया के सबसे बड़े आतंकवाद का मुखिया बन गया। यह किस बात का फर्क है। यह संवेदना का फर्क है। संवेदना

निर्धारित करती है कि आदमी ने जाना किस तरफ है। हमारा समाज आदमी की संवेदना को मारता है। हमारा परिवेश आदमी को जालिम बनाता है। उसको दरिंदगी के रास्ते पर छोड़ देता है। जब समझ के बाद संवेदना पैदा होती है, संवेदना के बाद रचनात्मकता पैदा होती है। संवेदना के बिना कोई भी सृजना हो तो सकती है, लेकिन वह वैसे ही होगी, जैसे बंदर के हाथ में बंदूक। सृजना अपने आप में कुछ नहीं होती, सृजना के पीछे संवेदना है। संवेदना से सृजना निखरती है।

संवेदना तय करती है कि हम कोई काम क्यों करते हैं। यदि हम मानवता व समाज के बुनियादी मुद्दों के प्रति संवेदनशील नहीं होंगे तो हम कुछ नहीं कर पाएंगे। तब सत्ता हमें यूं ही बरतती रहेगी। हमारा प्रयोग करती रहेगी। उसका मकसद इसी बात से हल होता है कि लोग संवेदनशील ना हों। इसीलिए इसकी शुरूआत हमारे स्कूलों से हो जाती है। बच्चों को सिर्फ और सिर्फ सूचनाएं प्रदान कर उन्हें संवेदनहीन बनाते हैं। ताकि जब बच्चे स्कूल कॉलेज व विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर बाहर निकलें तो उनके हाथ में डिग्री तो हो, लेकिन इनके दिमाग में समझ और संवेदना ना हो। हमारे आज के शासक भी ऐसा ही चाहते हैं। जब किसी के पास संवेदना आती है तो वह सवाल खड़े करता है। जब प्रश्नों के वह जवाब ढूंढ़ता है तो वह किसी दिशा की तरफ बढ़ता है। हमने दिशा को खत्म किया है। इसीलिए हमारे समाज में संवेदना और सृजनशीलता पैदा नहीं होती। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे आस-पास से मिल जाते हैं।

पंजाब का एक गांव है - संसारपुर। संसारपुर को हॉकी की नर्सरी कहा जाता है। उस एक गांव ने 360 हॉकी के खिलाड़ी पैदा किए हैं। 8 ओलंपियन हैं एक गांव से। क्यों? क्योंकि उन बच्चों को हॉकी का परिवेश मिलता है। आज बच्चा जन्म लेता है। दो साल के बच्चे को हॉकी पकड़ाकर ग्राउंड में भेज देते हैं, वहां एस्ट्रोट्रफ ग्राउंड बना हुए हैं। उन लोगों ने अपने बच्चों को एक परिवेश दिया।

रचनात्मकता का मतलब केवल कविताएं कहानियां लिखना ही नहीं होता। किसी भी क्षेत्र में रचनात्मकता हो सकती है। खेल अपने आप में रचनात्मकता है। चित्र, मूर्ति, साहित्य सहित अनेक क्षेत्रों में रचनात्मकता होती है। हमारे लोक साहित्य में महिलाएं गीत गाती हैं। वे लोक गीत लिखती नहीं हैं। सीधे गाती हैं। वह उनकी सृजनशीलता है। वे सदियों से गीतों को सृजती हैं और उन्हें याद रखती हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे पहुंचाती हैं। यह है असली रचनात्मकता। ऐसे ही रचनात्मकता चलती है, जब संसारपुर के हम उदाहरण देते हैं कि हॉकी के क्षेत्र में उसने यह काम किया तो हम शाहबाद के उदाहरण भी देते हैं। इसी ओलंपिक में शाहबाद से रिकॉर्ड खिलाड़ी भारतीय टीम में खेले।

पंजाब का ही एक और गांव है। उस गांव का नाम है - दोल्लेवाला। हालांकि ऐसे उदाहरण देने नहीं चाहिएं, लेकिन परिवेश व रचनात्मकता के संबंधों को समझने के लिए यह उदाहरण दिया जा रहा है। एक तरफ संसारपुर है, दूसरी तरफ दोल्लेवाला है। दोल्लेवाला के हर परिवार पर स्मैक का पर्चा दर्ज है। एक बार पुलिस ने इस गांव के बाहर पर्चा लगा दिया था कि इस गांव में कोई अपनी लड़की का रिश्ता ना करे। क्योंकि इस गांव के नौजवान विवाह के काबिल नहीं हैं। अगर परिवेश स्मैक का होगा तो बच्चे स्मैक पीएंगे। अगर परिवेश हॉकी का होगा तो बच्चे हॉकी खेलेंगे और यदि परिवेश किताबों का होगा तो बच्चे किताब पढ़ेंगे। एक तरफ किताब है, एक तरफ शराब है। आप कौन सा सभ्याचार, कौन सी संस्कृति व परिवेश बच्चों को देंगे?

शिक्षा जब हम देते हैं तो हमारा मूल संकल्प ही गलत है। हमारी शिक्षा प्रणाली और समाज प्राय: बच्चों को कूड़ादान समझता है। दुनिया की कोई शिक्षा नहीं कहती कि बच्चों को कूड़ादान की मानिंद भर दिया जाए। शिक्षा का मतलब बच्चों के दिमाग को भरना नहीं होता, बल्कि उसमें जो अच्छा है, उसे निकालना और उभारना होता है। कुदरत ने जो भी चीज पैदा की है, वह कोई भी किसी चीज से नहीं मिलती। हर चीज अपने आप में विलक्षण है। किसी एक फूल का रंग दूसरे से नहीं मिलता। किसी एक वृक्ष की पत्ती दूसरे वृक्ष की पत्ती से नहीं मिलती। लगभग आठ अरब लोग हैं इस संसार में। ना किसी की शक्ल मिलती है और ना किसी की अक्ल मिलती है। ना किसी के हंसने का तरीका मिलता है। ना किसी के रोने का तरीका मिलता है। अगर आठ अरब लोग हैं तो आठ अरब प्रकार की हंसी है। 'चमन में रंगो-बू से बात बनती है। हमीं हम हैं तो क्या हम हैं तुम ही तुम हो तो क्या तुम हो।' इस विविधता को हमारी शिक्षा मार रही है।

हमारी शिक्षा फ्रेमिंग कर रही है, कंडीशनिंग कर रही है। एक ऐसा फ्रेम है, जिसमें बच्चे आते तो अलग-अलग हैं, लेकिन हमें उन्हें एक जैसा बनाना चाहते हैं। यूनिफोर्मिटी (एकरूपता) हमने जाने कहां से ले ली। यह हमारे बच्चों की रचनात्मकता और विलक्षणता को खत्म कर रही है। जब कुदरत ने इतनी विलक्षणता रखी है कि कोई भी पौधा, कोई भी फूल, कोई भी पशु, कोई भी पक्षी दूसरे जैसा नहीं है। हर आदमी अलग है तो हमने वो विलक्षणता ढूंढने की कोशिश क्यों नहीं की। हम अध्यापकों के पास जब बच्चे आते हैं तो हम उन्हें आते ही एक सा ट्रीटमैंट देना शुरू कर देते हैं। कभी जानने की कोशिश नहीं करते कि बच्चों के अंदर क्या है? हमारी शिक्षा बच्चों को असल में पहचानने की कोशिश नहीं करती। जब कोई अध्यापक उन्हें पहचानने की कोशिश करता है तो वह उनमें से कुछ ना कुछ निकाल लेता है। उसमें से कोई चित्रकार निकल आता है। उसमें कोई साहित्यकार, गीतकार, वैज्ञानिक

निकल आता है। पर यह हमारी बदकिस्मती है कि हमने ऐसा कुछ करने की कोशिश नहीं की।

हमारे लिए शिक्षा का क्या मतलब है। मैंने एक कविता लिखी थी। उसकी कुछ पंक्तियां मैं आपके साथ सांझा कर रहा हूँ। उसका शीर्षक है - क्या होती है कविता?

स्कूल की लाईब्रेरी में अचानक ही बैठे-बैठे
पुस्तकों के पन्ने पलटते-पलटते खुल गया एक पन्ना
मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है -कविता
मैं सहज ही सारी की सारी को पढ़ लेती हूँ
एक सांस, एक वक्त
जैसे कोई डीक लगाकर पानी पीता है
जैसे कोई शर्बत की घूंट भरता है
जैसे कोई आत्मा का गीत गाता हुआ
अपना आपा भूल जाता है
तभी मन एक सवाल उठता है
कि क्या होती है कविता
मैं लाइब्रेरी से उठकर मैडम के पास जाती हूँ
और पूछती हूँ कि मैडम क्या होती है कविता?
मैडम के माथे पर उलझन और चिंता की भृकुटि तन जाती है
कुछ देर सोचने के बाद उत्तर मिलता है-
कविता पाँच नंबर का प्रश्न होती है,
जिसके सरलार्थ करने होते हैं,
खाली जगह भरनी होती है,
पूछे गए सवालों के उत्तर देने होते हैं
और पेपरों में पास होना होता है
मैं उलझे हुए मन के साथ वापिस आती हूँ
घर आ जाती हूँ
और यही सवाल अपने डैडी से पूछती हूँ
कि डैडी क्या होती है कविता?
डैडी कुछ देर चुप रहते हैं
और फिर गुस्से में कहते हैं
अपना होमवर्क करो

कोई जरूरत नहीं फालतू के कामों में ध्यान लगाने की
बेल्यां दी गल्लां होंदियां ने कवितावां, कहाणियां

हम बच्चों को कैसे ले रहे हैं। उनकी संवेदनशीलता को किस तरह से ले रहे हैं। हम बच्चों के सवालों के जवाब दे ही नहीं सकते। जब बच्चा छोटा होता है। हम बच्चों के साथ बहुत खेल लेते हैं। बच्चे हमारे कंधे पर चढ़ जाते हैं। लेकिन जब बच्चा 12-15 साल का होता है। तब हमें समझ ही नहीं आता कि बच्चों के साथ कैसे बात की जाए।

हमारे पास बच्चों के साथ बात करने की भाषा ही नहीं है। इसलिए ना मां-बाप और ना अध्यापक बच्चों के कभी दोस्त बन सकते। क्योंकि हमें वो सलीका और तरीका ही नहीं आता कि हम युवा होते बच्चे के साथ क्या संवाद करना है। उसकी कल्पनाशीलता को कैसे बनाए रखना है। उसके प्रश्नों के जवाब हमारे पास होते नहीं। ना अध्यापक उनके जवाब देता है और ना माता-पिता उनके जवाब देते हैं। तो बच्चा फिर कहां जाएगा। वो बच्चा अपने हम उम्र में जाएगा और वहां से अधपका ज्ञान लेकर आएगा। या बच्चा निराशा में जाएगा। हमने निराश युवा वर्ग पैदा कर दिया है। जब समाज का भविष्य निराशा में चला जाता है, उसमें से बहुत से रास्ते ऐसे निकलते हैं, वो रास्ता खुदकुशी का हो सकता है। वो रास्ता अपराध का हो सकता है। वो रास्ता नशे का हो सकता है और हम देख रहे हैं अपने समाज में। इसमें युवा पीढ़ी कोई कसूर नहीं। कसूर हमारे परिवेश का है। जो हमने दिया ही नहीं उसे।

असल में हम शिक्षा के नाम पर बच्चों को वह देना चाहते हैं, जो हमारे पास है। चाहे वो मां-बाप हैं, चाहे समाज है, चाहे अध्यापक है, हम यह नहीं सोचते कि बच्चा क्या सीखना चाहता है। हम अपने सारे सपने बच्चों पर लाद देते हैं। घर में मां-बाप लाद देते हैं और स्कूल में अध्यापक लाद देते हैं। हम ऐसे काम बांट लेते हैं। बेटा मैं तेरे को हिन्दी पढ़ाऊंगा। मैं तेरे को अंग्रेजी, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित पढ़ाऊंगा। दुनिया का सबसे ज्यादा ज्ञान मुझे ही है। मैं इसका सबसे बड़ा विशेष हूँ। इसलिए जो मैं कह रहा हूँ, वो सीखना है। हमने ऐसे तरीके ही डिजाइन नहीं किए अपनी शिक्षा में जिससे पता चले कि बच्चा क्या चाहता है। वह पढ़ने की कोशिश करता है और वह करने की कोशिश करता है, जो वह करना ही नहीं चाहता। तो कैसा समाज पैदा होगा। हमारा समाज वैसा ही पैदा हो रहा है।

आप दुनिया का साहित्य पढ़िए। एक छोटी सी किताब है - तोत्तो चान। तोत्तोचान को अगर वह अध्यापक नहीं मिलता तो तोत्तो चान इस दुनिया से कहीं गुम हो गई होती। आज तोत्तो चान दुनिया की हर भाषा में अनुवाद हो चुकी है। ऐसी कितनी किताबें हैं, जिनमें बच्चों के ऐसे तजुर्बात हैं, जो उन्होंने उन पुस्तकों में सांझे किए। वो बताते हैं कि अगर हमें वो अध्यापक ना मिलता तो हम मर मिट गए होते।

शिक्षा हमें समाज के अनुभवों व मसलों से नहीं जोड़ती। एक बच्चा रेलवे स्टेशन पर भीख मांगता है। एक बच्चा पहली कक्षा में पढ़ता है। जो बच्चा भीख मांगता है, वह रुपयों के सारे जोड़-तोड़ लगा लेता है। उसे पता है कि उसके पास जब 20 रुपये होंगे तो उसे रोटी मिलेगी। उसके बिना रोटी नहीं मिलेगी। जो बच्चा पहली कक्षा में पढ़ता है। वह जोड़ घटा तो करना सीख जाता है। लेकिन उसे संख्या का मतलब क्या होता है, यह समझ नहीं होती। हम अपने ज्ञान को सिर्फ और सिर्फ स्कूल के कमरों तक सीमित कर देते हैं। मुझे आज तक समझ नहीं आया कि जो गणित में मैंने कोस थीटा सहित कितने ही प्रकार के सवाल सीखे थे, वे मेरे जीवन में कहां काम आएंगे। मुझे बताया ही नहीं गया।

मुझे यह बात समझ नहीं आती कि सूर्य ग्रहण से स्नान करने का क्या संबंध है। मुझे तो कुछ और बताया गया था। जो बताया गया था, वह हो नहीं रहा। जो स्कूल में बताया जाता है, वह भी समझ नहीं आता। बहुत से लोगों को स्कूली शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण, दिन-रात बनने के बारे में पता नहीं होता। क्योंकि हमारे लिए सूर्य ग्रहण तीन नंबर का प्रश्न है।

अगर हमारी शिक्षा ऐसी होगी कि हम जुगाड़ से काम चलाएंगे। हमारी शिक्षा मूलतः एक जुगाड़ है। इसीलिए हम ज्ञान से समझ और संवेदना की तरफ चलते ही नहीं। हमारे पास पाठ्य-पुस्तकें होती हैं। फिर गाईड आ जाती हैं। उसके बाद शोर्ट नोट्स आ जाते हैं। उनमें से कुछ प्रश्नों की पर्चियां बनाकर हम परीक्षा केन्द्र में चले जाते हैं। कारण मकसद सीखना नहीं है। सिर्फ और सिर्फ परीक्षा में पास होना है। इस बात को समझने की जरूरत है। इसमें अध्यापक ही शामिल नहीं। अध्यापक तो उसका हिस्सा है। पीछे शिक्षा प्रणाली है सारी, जिसने अध्यापक को ऐसा करने पर मजबूर किया है।

अब तो ऊपर से स्लाइड आती है कि यह-यह काम करना है बस। एक महीने में तीन पाठ कराने हैं बस। तीसरे से चौथा नहीं करवाया जा सकता। उसकी एक्टिविटी भी फिक्स होकर आ गई कि यह-यह करवाना है बस। जब आप अध्यापक को ऐसे बांध दोगे तो कैसी शिक्षा दी जा सकेगी। कैसे रचनात्मकता पैदा होगी। स्कूल कॉलेज व विश्वविद्यालय ही तो ऐसा स्पेस हैं, जहां पर अध्यापक और विद्यार्थी प्रयोग कर सकते हैं। कुछ नया कर और सोच सकते हैं। जहां से सृजनात्मकता पैदा होती है।

मिलकर आज हमें सोचना है कि हमारे बच्चे मशीनें ना बनें। हम विशेषज्ञ पैदा कर सकते हैं। संवेदना के बगैर आदमी पैदा नहीं होंगे। हमारी जरूरत आदमी का आदमी बने रहना है। वह संवेदना, समझ और सृजना के बिना नहीं होगा। क्योंकि हमें मशीनों की नहीं, हमें इन्सानों की जरूरत है, जिनमें इन्सानियत हो।

पिछले डेढ़ साल में ऑनलाइन शिक्षा के नाम पर जो थोड़ा बहुत हमारे पास था, उसे खत्म कर दिया है। ऑनलाइन शिक्षा सत्ता को बहुत रास आती है। सत्ता बहुत पहले से चाहती है कि ऑनलाइन शिक्षा हो जाए। जब विश्वविद्यालय में विद्यार्थी इकट्ठे होते हैं, तो संवाद और चर्चा होती है। मिलकर कुछ करने का जज्बा पैदा होता है। संघर्ष पैदा होता है। अब ऑनलाइन शिक्षा नया हथियार होगी। कि बच्चों को संस्थान में आने ही नहीं दिया जाए। आदमी को अपने घर तक सीमित करने का नया तरीका इजाद हो गया है। आने वाले समय में स्कूलों में अध्यापकों की जरूरत ही नहीं होगी। आपसे बहुत अच्छे-अच्छे भाषण तैयार करवा लिए हैं उन्होंने। वो आपको दे दिए जाएंगे। एक व्यक्ति की जरूरत होगी, जो चार कमरों में प्रोजेक्टर चला दे। लो जी सुनो भाषण।

हमारे पंजाब में जो हाल ही में हुआ है। वह बता दूं। कोरोना में दो सत्र निकले हैं शिक्षा के। उन दो सत्रों में स्कूलों के परिणाम सौ प्रतिशत रहे हैं। कोई बच्चा स्कूल नहीं गया। मेरे स्कूल में दसवीं में 42 बच्चे पढ़ते हैं। उनमें से अधिकतर के 650 में से 650 नंबर आए हैं। जब बच्चे स्कूल गए ही नहीं। अध्यापक और विद्यार्थी कक्षा में आए ही नहीं। लेकिन परिणाम सौ प्रतिशत आ गया। अंक सौ प्रतिशत आ गए। तो स्कूलों और अध्यापकों की क्या जरूरत है। इसका मतलब उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि अध्यापकों और स्कूलों के बिना भी सौ प्रतिशत परिणाम लाया जा सकता है और सौ प्रतिशत बच्चों के सौ प्रतिशत अंक भी लाए जा सकते हैं। कोरोना से पहले इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ था। कोरोना में यह नया इतिहास बना है।

हमारे देश की सत्ता के पास 140 करोड़ लोगों का कोई मॉडल नहीं है। हम उनको उनके हाल पर छोड़ देते हैं। केवल 10 प्रतिशत लोग होते हैं, जोकि किसी भी प्रतियोगिता में आगे आ जाते हैं। 90 प्रतिशत कहां जाएंगे। उन 90 प्रतिशत लोगों के लिए सरकारों के पास क्या है। उनको भगवान के आसरे पर छोड़ा जा रहा है। इतना गला काट प्रतियोगिता पैदा कर दी कि सौ प्रतिशत नंबर दे दो। जो दाखिले हो रहे हैं कॉलेजों में। 99 के ऊपर मैरिट जा रही है। इससे नीचे वाले कहां जाएंगे। जिसके माथे पर हमने फेल लिख दिया। वे कहां जाएंगे। क्या उन्हें अवसरों की जरूरत नहीं है। वे कहां जाएंगे। जहां पर 10 प्रतिशत की बात होती है और 90 प्रतिशत को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है। वहां पर सृजनशीलता का सपना लेना बहुत मुश्किल होता है। यह आज के दौर की सबसे बड़ी चुनौती है।

इसीलिए लाखों लोग दिल्ली की सरहद पर बैठे हैं। हम बच्चों के साथ स्कूलों में ना जाने क्या-क्या कर रहे हैं और उनके मां-बाप, दादा पुलिस से टक्कर ले रहे हैं। पानी की बौछारें सह रहे हैं। लाठीचार्ज सहित विभिन्न प्रकार की यातनाएं सह रहे हैं। तो कहां है हमारी शिक्षा का संबंध हमारे जीवन से। हमारा परिवेश हमें कैसे प्रभावित करता है। एक कविता के साथ मैं

अपनी बात समाप्त करुंगा। एक बच्चा कैसे सोचता है। मैं ऐसे बच्चों के साथ काम करता हूँ, जिनके चाचा-ताया, दादा, दादी, मां-बाप पिछले 10 महीनों से दिल्ली की सरहद पर बैठे हैं। किसी का पिता खुदकुशी कर गया था। उन परिवारों ने कैसे अपने आपको संभाला था। उन परिवारों में जो बच्चे पैदा होते हैं, पलते हैं। वे कैसे-कैसे सोचते हैं। एक छोटा बच्चा है। जिसका नाम और कविता का शीर्षक शेरू है। यह कविता वास्तविक है। थोड़ी कल्पना का सहारा लिया गया है-

जद तों बापू धरने ते बैठा है
शेरू दी हरकतां बदल गईयां ने
सारा दिन टीवी देखदा
दस महीनां तों राजधानी दे बूहे ते बैठे
ओस दे बापू चाचे-ताए, चाचियां ताईयां
पुलिस नाल टकरांदे, पाणी दियां बौछारां
आजकाल शेरू सत्तवीं क्लास दी पंजाबी दी किताब दा सत्तवां पाठ
बंदूकां वाला बार-बार पढ़दा है।
(भगत सिंह नूं बंदूकां वाला कहया जांदा है।)
एक दिन पता नीं की सोचया उसने
ओ अपने दादे नाल जा के
पिस्तौल लै के आया सी
ओ कदे किसी दरख्त तल्ले
लुक-लुक के ठा-ठा करदा
ऐधर-ओधर दौड़या फिरदा
कुछ देर बाद बापू की पगड़ियां वाली अलमारी दे कोल गया
बसंती रंग दी पग चुक्की ते शीशे अगे जा के सिर ते लपेट लई
ते दादे कोल जा के ऊच्ची-ऊच्ची बोलण लगया- 'इंकलाब जिंदाबाद'
दादा ओन्नूं तक-तक हैरान होंदा
रात नूं सोंदा-सोंदा वी ओ इंकलाब जिंदाबाद कहंदा रहंदा
आज तां ओसने हद ही कर दी
रेत इकट्ठे कीती, ओसे विच डक्के गड्डे
ते ऊच्ची-ऊच्ची बोलण लगया-
'भाई भगतया जेड़ी बंदूकां बीजियां सी तूं
दस्स तां कित्थे रखियां

फेर की फैदा जे हुण ना लभियां
सांडर्स ते ओडवायरां दी तां लाइन लगी होई आ
सिद्दी जई गल्ल है भ्रावा-जां तां ओ बंदूकां लै आ
इक तेरी ते इक मेरी
इकट्ठे मारांगे ओनानूं
या फेर ए डक्के गड्डे ने मैं रेत विच
सवेर नूं बंदूकां बण जाण ऐ
ठीक ऐ-जा सवेरे मिलने आं फेर
गुड नाइट भाई, भुल्ली ना होण।'
रात नूं सुपने विच भगत सिंह आऊंदा है
ऐ की भाई, खाली हाथ आ गिया
दंबूक कित्थे ऐ तेरी
ऐ किताब दा की करणा सी
ओ कहंदा- 'ओ कमलया, ऐही ऐ बंदूक
पढ़िया कर, जद समझ आ गई ना मेरे वांगू
कि दुश्मन कौण है, ते दलीलां दे कारतूसां नाल चित कर दईं
हौंसले ते जज्बेयां दे मिशन नाल झोली भर कर रखीं
मोर्चे ते बोहत लंबे हो सकदे ने
डरीं ना, झुकीं ना, बस ऐ बंदूकां घर-घर वंडीं
आपणे वरगे और भगत सिंह पैदा करीं
जेकर घर-घर ए बंदूकां होणियां
दलीलां दे कारतूस, जज्बयां दा मिशन, असली दुश्मन दी पहचाण
ओस दिन सचमुच इंकलाब जिंदाबाद हो जाणा।
ते आजादी दे अर्थ समझ आ जाणे ने।'

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें		
कुरुक्षेत्र	योगेश शर्मा	9896957994
यमुनानगर	बी. मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	जयपाल	9466610508
करनाल	अरुण कैहरबा	9466220145
घरौंडा	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	नरेश सैनी	9896207547
जीन्द	मंगतराम शास्त्री	9416513872
टोहाना	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	अविनाश सैनी	9416233992
भिवानी	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	परमानंद शास्त्री	9416921622
हिसार	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	अमित मनोज	9416907290
मेवात	सिद्दीक अहमद मेव	9813800164
शिमला	एस आर हरनोट	1772625092
राजस्थान (परलीका)	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	ब्रजपाल	9996460447
	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	आर.के. मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	एन.एस.डी. बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	www.notnull.com/desharyana	